दूरदर्शन

मई 1988

मूल्य : 2.00 रुपये

ग्रामीण विकास में संस्थागत ऋण का महत्व

गांव के कमजोर वर्गों को पूंजीकृत संसाधनों के हस्तान्तरण की आवश्यकता होती है ताकि उन्हें उत्पादन के लिए एक ठोस आधार प्रदान किया जा सके और श्रमिक के मामले में उत्पादक क्षमता और कारीगर के मामले में उनके हुनर का इस्तेमाल किया जा सके।

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास का प्रमुख मासिक

वर्ष 33 | वैशाख-ज्येष्ठ 1910 | अंक 7

इस अंक में — पृष्ठ

ग्रामीण बैंकिंग व्यवस्था बनाम क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक 2
डा. राकेश अग्रवाल एवं डा. एम.सी. चिटकारा

ग्रामीण विकास में बैंकों की भूमिका 6
सुबह सिंह यादव

ऋण वितरण में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का योगदान 11
वाई गांगी रेड्डी

ग्रामीण ऋण प्रणाली विकास, प्रगति तथा समस्याएं 14
ए.आर. पटेल

ग्रामीण विकास एवं बैंक अपेक्षाएं, उपलब्धियां एवं सम्भावनाएं 18
डा. नरेश चन्द्र त्रिपाठी

बांसवाड़ा जिले में बैंकिंग विकास 20
अशोक कुमार नागर एवं डा. इन्द्रवर्धन त्रिवेदी

सार्वजनिक कोष कार्यक्रम
नगालैंड के ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी उन्मूलन अभियान 24
अ.मा.गोखले

ग्रामीण क्षेत्रों में विस्तार सेवा तथा ऋण सुविधाओं में समन्वय 26
आर. तिल्लैई गोविन्दन

मध्य प्रदेश में भूमि सुधारों का प्रभाव-एक अध्ययन 28
डा. एच.सी. जैन

ग्राम्य मूलक दृष्टिकोण के पोषक हैं क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक 32
हरि विश्नोई

सवा सेर गेहूं 35
प्रेमचन्द

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए।

●

अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है।

●

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, पता बदलने या अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिये।

सम्पादकीय पत्र व्यवहार : सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), कृषि मंत्रालय, ग्रामीण विकास विभाग, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।

दूरभाष : 384888

एक प्रति : 2.00 रु.

वार्षिक चन्दा : 20 रु.

सहायक सम्पादक : गुरचरण लाल लूथरा
उप सम्पादक : राकेश शर्मा

सहायक निदेशक : राम स्वरूप मुंजाल (उत्पादन)

आवरण पृष्ठ : मेघजी परमार

चित्र : फोटो प्रभाग एवं ग्रामीण विकास विभाग से साभार

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी यही हों।

ग्रामीण बैंकिंग व्यवस्था बनाम क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक

डा. राकेश अग्रवाल
डा. एस.सी.चिटकारा

भारतीय अर्थव्यवस्था में ग्रामीण अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था की सुदृढ़ता ग्रामीणों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर बहुत कुछ निर्भर करती है। गांव में कृषक एक आर्थिक इकाई है, जिसके समक्ष ऋण की समस्या कदम-कदम पर बनी रहती है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के चार दशक बाद भी अभाव ग्रामीणों की नियति का अंग बने हुए हैं। ग्रामीण जनसंख्या का एक बड़ा भाग भूमिहीन श्रमिकों एवं सीमान्त कृषकों के रूप में निर्धनता में जीवन-यापन करता है। भारत की 76.24 प्रतिशत जनसंख्या 5,75,624 गांवों में बसती है। राष्ट्रीय सांख्यिकीय सर्वे के अनुसार वर्ष 1984-85 के अन्त तक देश में गरीबी रेखा के नीचे रहने वालों की संख्या 27.27 करोड़ थी। यह कुल जनसंख्या के 37 प्रतिशत के बराबर है। गरीबी रेखा के नीचे रहने वालों में 22.22 करोड़ लोग गांवों में रहते हैं। स्पष्ट है कि गरीबी रेखा के नीचे रहने वालों का 81 प्रतिशत भाग गांवों में निवास करता है। गांवों की यह निर्धनता देश के सर्वांगीण विकास में बाधक रही है। जिसको दूर करने के लिए ग्रामीण विकास के अनेक कदम उठाये गये हैं। बैंकिंग व्यवस्था का विस्तार उनमें से एक है।

ग्रामीण विकास विभिन्न कार्यक्रमों, योजनाओं, परियोजनाओं तथा संस्थाओं आदि के माध्यम से ग्रामीण निर्धनों की आर्थिक व सामाजिक स्थिति सुधारने के लिए तैयार की गयी रणनीति है। जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे किसानों, काश्तकारों और भूमिहीन गरीब लोगों तक विकास का लाभ पहुंच सके। ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुधारने में बैंकों का विशेष योगदान है। राष्ट्रीयकरण के बाद इस दृष्टि से बैंकों ने ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। वाणिज्यिक बैंक परम्परागत रूप से शहरी क्षेत्रों में स्थित और लाभ कमाने के दृष्टिकोण वाले थे। शहरी क्षेत्रों में बैंकों की शाखाओं का पर्याप्त विस्तार था। ग्रामीण क्षेत्र इनकी सुविधाओं से अछूते थे। राष्ट्रीयकरण के बाद एक ओर इन बैंको का ग्रामीण क्षेत्रों में विस्तार हुआ, दूसरी ओर गांवो की आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए 26 सितम्बर, 1975 को क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना के लिए एक अध्यादेश जारी किया गया जो 1976 में अधिनियम बन गया। इसी के अन्तर्गत क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना हुई।

स्थापना के उद्देश्य

भारत में ग्रामीण ऋण ग्रस्तता की समस्या शताब्दियों से चली आ रही है। यह समस्या उतनी ही पुरानी है जितनी कृषि। साहूकारों, महाजनों द्वारा कृषकों को आजीवन ऋण के चक्र में फसाये रखने के कारण शाही कृषि आयोग को यह कहने के लिए बाध्य होना पड़ा कि भारत का कृषक ऋण में जन्म लेता है, ऋण में पलता है और ऋण में ही मर जाता है।

भारत के 5,75,624 गांवों में से केवल 23,540 गांवों में बैंक सेवायें उपलब्ध हैं। भारत सरकार का विश्वास था कि राष्ट्रीयकृत बैंक अर्थव्यवस्था को गत्यात्मक बना देंगे तथा ग्रामीण विकास की दर को त्वरित करने में सहायता देंगे किन्तु राष्ट्रीयकृत वाणिज्यिक बैंकों द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाओं के विस्तार के बाद भी जब ग्रामीण साख व्यवस्था में सन्तोषजनक प्रगति दिखायी नहीं दी तो सरकार द्वारा ग्रामीण साख प्रदान करने वाली वैकल्पिक संस्था के रूप से नाबार्ड तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की गयी। ग्रामीण परिवेश में इन बैंको के विस्तार के कारण तथा उद्देश्य इस प्रकार हैं-

1. ग्रामीण क्षेत्रों में साख सुविधाओं को सरल बना कर ग्रामीण समाज को ऋण भार से मुक्ति दिलाने के लिए।
2. देश की बदलती हुई आर्थिक परिस्थितियों में ग्रामीण

भारत में बैंकिंग ढांचा

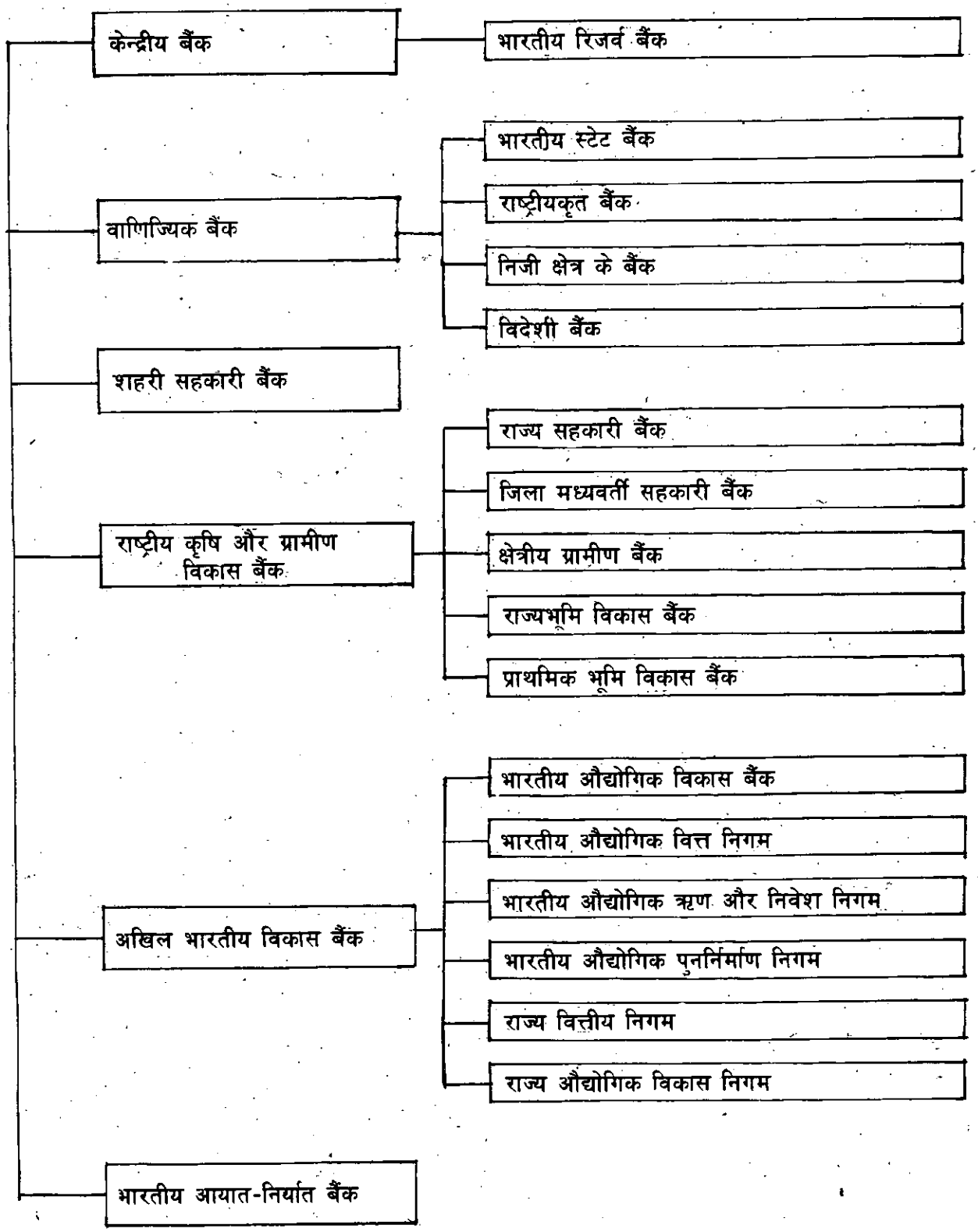

स्रोत : रिजर्व बैंक बुलेटिन, जनवरी 1986

क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाओं का विस्तार करने के लिए।

3. एक ऐसी संस्था का विकास करने के लिए जिसका लक्ष्य ग्रामीण साख के क्षेत्र में कार्यरत अन्य संस्थाओं से प्रतिस्पर्धा के स्थान पर सहयोग करना हो।
4. एक ही संस्था में व्यापारिक और सहकारी दोनों प्रकार की बैंकिंग संस्थाओं के गुणों का सम्मिश्रण करने के लिए।
5. पूंजी-प्रधान कृषि प्रणाली की दृष्टि से ग्रामीण अंचलों के निकटतम स्थानों में बैंकिंग सुविधायें उपलब्ध कराने के लिए।
6. कृषि आधारित उद्योगों के विकास हेतु ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाओं को सरल बनाने के लिए।
7. किसानों को उन्नत-कृषि करने में प्रोत्साहन देने हेतु ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकों का विकास करने के लिए।
8. ग्रामीण क्षेत्रों में गोबर गैस संयन्त्र आदि के विकास की दृष्टि से शहर के स्थान पर ग्रामीण क्षेत्र में ही आर्थिक सहायता उपलब्ध कराने के लिए।
9. कमज़ोर वर्ग के ग्रामीणों को आर्थिक सहायता देने में लीड बैंकों की सहायता करने के लिए।
10. अनाज की सरकारी खरीद में सरकारी कर्मचारियों एवं किसानों की सुविधा की दृष्टि से ग्रामीण क्षेत्रों में ही बैंकिंग सेवा सुलभ कराने के लिए।
11. पशुपालन, मुर्गीपालन, मछली पालन, डेरी आदि कार्यों को सफल व सुचारु विधि से संचालित कराने के लिए।
12. फसल बीमा कार्य में सहयोग करने के लिए।
13. ग्रामीण दस्तकारों, छोटे किसानों, खेतिहर मज़दूरों, भूमिहीन व्यक्तियों तथा लघु-कुटीर उद्यमियों आदि को आर्थिक सहायता प्रदान कर उनकी आर्थिक स्थिति व जीवन स्तर में सुधार करने के लिए।
14. ग्रामीण क्षेत्रों में बचतें प्रोत्साहित व प्रवाहित करने के लिए।
15. ग्रामीण बैंकों द्वारा ग्रामीणों में बैंकों के प्रति विश्वास एवं आग्रह उत्पन्न करने के लिए।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का विस्तार

प्रारम्भ में 2 अक्तूबर, 1975 को 5 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना हरियाणा, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल और राजस्थान में की गयी। इनकी संख्या में प्रतिवर्ष तेजी से विस्तार हुआ। 1978 में इनकी संख्या 34 हो गयी जो अप्रैल 1985 में बढ़कर 183 हो गयी। इनके द्वारा 322 जिलों को लगभग 10,725 शाखाओं द्वारा आच्छादित किया गया है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना ऐसे क्षेत्रों में की गयी है जहां प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है। यह आय अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही बहुत कम रहती है। फिर भी क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की जमा वर्ष 1983 में 677.85 करोड़ रुपये तथा वर्ष 1984 में 959.95 करोड़ रुपये थी। वर्ष 1983 की तुलना में जमा में वर्ष 1984 में 41.61 प्रतिशत की वृद्धि हुई। वर्ष 1984 के अन्त तक प्रत्येक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की औसत जमा 5.54 करोड़ रुपये रही तथा प्रत्येक शाखा की औसत जमा 9.37 लाख रुपये थी।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों ने अपने उद्देश्यों के अनुरूप ग्रामीण दस्तकारों, सीमान्त कृषकों और भूमिहीन श्रमिकों आदि को ऋण तथा अग्रिम दिये हैं। वर्ष 1982 में ऋण तथा अग्रिम की राशि 577.11 करोड़ रुपये थी जो वर्ष 1983 व 1984 में बढ़कर क्रमशः 750.84 व 1080.77 करोड़ रुपये हो गयी। वर्ष 1984 में ऋण तथा अग्रिम की राशि में वर्ष 1982 की तुलना में 87 प्रतिशत तथा वर्ष 1983 की तुलना में 44 प्रतिशत की वृद्धि हुई। वर्ष 1984 के अन्त तक प्रत्येक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक का औसत ऋण 6.24 करोड़ रुपये था तथा प्रत्येक शाखा का औसत ऋण 10.51 लाख रुपये था। प्रतिवर्ष इन बैंकों से लाभ उठाने वाले ग्रामीणों की संख्या बढ़ती जा रही है। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों द्वारा ऋण विशेष योजना या कार्यक्रम के अन्तर्गत भी दिया जाता है, जैसे वर्ष 1984 के अन्त तक 9,76,985 व्यक्तियों को समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत 211.12 करोड़ रुपये ऋण दिया गया।

अपनी व्यावहारिक सीमाओं तथा ग्रामीण परिवेश की समस्याओं से ग्रसित होने के कारण क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक हानि में चल रहे हैं। इन बैंकों द्वारा वर्ष 1984 के अन्त तक लगभग 15.40 करोड़ हानि दिखायी गयी है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

प्रत्येक ग्रामीण बैंक के पास चुकता पूंजी 25 लाख रुपये है, जो आवश्यकता वाले क्षेत्र में विनियोग करने के लिए बहुत थोड़ी है। फलस्वरूप विनियोग से आय बहुत कम होती है। अतः चुकता पूंजी को अधिकृत पूंजी की आधी से अधिक कर देना चाहिए जिससे विनियोग विस्तार किया जा सके।

ग्रामीण क्षेत्रों में वाणिज्यिक – बैंक कार्य-क्षेत्र एक होने के कारण ग्रामीण बैंकों के लिए समस्या बन जाते हैं। ग्रामीण अपनी बचत तो वाणिज्यिक बैंकों में जमा करते हैं किन्तु ऋण ग्रामीण बैंक से लेना चाहते हैं। अतः ग्रामीण क्षेत्रों में या तो वाणिज्यिक बैंकों का विस्तार रोका जाये या उनका उद्देश्य गांवों में औद्योगिक विकास का हो। इससे ग्रामीण और शहरी विकास में समन्वय व सन्तुलन स्थापित होगा।

एक प्रभावी किसान अनेक बैंकों से ऋण ले लेता है। जिस कारण ऋण के दुरूपयोग की सम्भावना बढ़ती है। अतः बैंक शाखाओं का कार्यक्षेत्र बंटा हुआ होना चाहिए।

स्वीकृत ऋणों के प्रयोग पर निरीक्षण व्यवस्था अपनायी जाये जिससे कि ऋण उसी कार्य में लगे जिसके लिए लिया गया है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की एक ही दशक में 10 हजार से अधिक शाखायें खुल चुकी हैं। शाखा विस्तार के स्थान पर कार्य-क्षेत्र का विस्तार किया जाना चाहिए जिससे अप्रत्यक्ष खर्चों में कमी होगी और शाखाओं पर नियन्त्रण प्रभारी होगा।

ग्रामीण बैंकों द्वारा कृषि ऋण के रूप में दी जाने वाली राशि आवश्यकता से बहुत कम होती है। कृषि विकास के लिए इस मात्रा को बढ़ाना जरूरी है।

ऋण को अनुदान समझ कर प्रयोग करने के कारण ऋण वसूली औसत रूप से लगभग 50 प्रतिशत रहती है। इस स्थिति में ग्रामीण बैंकों को भारी समस्या का सामना करना पड़ता है। अतः ऋण वसूली में कठोरता के साथ इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए कि ऋण उत्पादक कार्यों के लिए दिये जायें। इससे ऋणी की मानसिकता बदलती है-एक तो वह ऋण को अनुदान नहीं समझेगा और दूसरे ऋण को उत्पादक कार्यों में ही लगायेगा। फलस्वरूप रोज़गार के अवसर बढ़ेंगे।

ग्रामीण क्षेत्रों में जो लघु उद्योग स्थापित किये जाते हैं, अधिकांश कुछ समय बाद कच्चे माल की कमी, भण्डार की कमी, बिजली की कमी, उत्पादित माल की खपत में कमी आदि के कारण बन्द हो जाते हैं। ऐसे में ऋण की वापसी मुश्किल हो जाती है। इन समस्याओं के समाधान में बैंकों को सहयोग करना चाहिए। इससे से दोनों पक्षों का हित सम्वर्द्धन होगा।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को चाहिए कि वे ग्रामीण दस्तकारों को सहकारी समितियां बनाने के लिए प्रोत्साहित करें।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की शाखायें ऐसे स्थानों पर स्थापित की जायें जहां छोटे कृषकों व दस्तकारों की अधिकता हो जिससे वे इन बैंकों का लाभ प्राप्त कर सकें।

ग्रामीण पृष्ठभूमि वाले प्रशिक्षित कर्मचारियों की कमी ग्रामीण बैंकों के विकास में बाधक रहती है। कृषकों की भावेनाओं को उनके परिवेश का व्यक्ति ही भली-भांति समझ सकता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में यातायात एवं संचार साधनों के अभाव में बैंकों की कार्य गति धीमी रहती है। उचित भवनों की कमी और सुरक्षा की समुचित व्यवस्था न होने के कारण बैंकों का कारोबार सीमित रहता है। इन साधनों के विकास करके ही बैंकों का भी कायाकल्प हो सकता है।

ग्रामीण समाज का निर्बल वर्ग सदियों से साहूकारों के शोषण का शिकार होता आया है। सरकार के समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ग्रामीण युवकों को स्वरोजगाार हेतु प्रशिक्षण, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम, न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम आदि के साथ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक उसके लिए आशा की किरण हैं। सरकार को इन बैंकों की खामियों को दूर करके ग्रामीणों के हित में इन्हें सशक्त बनाना चाहिए। ग्रामीण अंचलों में ग्रामीण बैंकिंग व्यवस्था के विकास की तमाम सम्भावनायें विद्यमान हैं। ग्रामीण क्षेत्रों के विकास लिए क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का संख्यात्मक व गुणात्मक विस्तार ज़रूरी है। तभी गांवों में सामाजिक -आर्थिक परिवर्तन हो सकता है तथा गांव भारत के आर्थिक विकास में अधिक योगदान कर सकते हैं।

पोस्ट ग्रेजुएट डिपार्टमेन्ट आफ कामर्स
एस.एस.वी.(पी.जी.) कालेज,
हापुड़-245101 (उ.प्र.)

ग्रामीण विकास में बैंकों की भूमिका

सुबह सिंह यादव

भारत गांवों का देश है। 1981 की जनगणना के अनुसार देश की 76.7 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है तथा 65.6 प्रतिशत से भी अधिक जनसंख्या कृषि पर आश्रित है। कृषि विकास आर्थिक विकास की एक पूर्व शर्त है। अब अभिवृद्धित रूप से पूंजी-गहन होती जा रही है, जिसमें वित्त की खण्डित पद्धतियों की महती आवश्यकता है। 1968 के प्रारम्भ में भारत सरकार ने वाणिज्यिक बैंकों पर सामाजिक नियन्त्रण की योजना लागू की। इस योजना के अन्तर्गत बैकों से यह प्रत्याशा की गई थी कि वे बैंक साख को अधिक विस्तृत रूप से विभिन्न दिशाओं में प्रवाहित करें एवं कृषि तथा लघु उद्योग जैसे क्षेत्रों को अधिक साख प्रदान करें। विकास प्रक्रिया के अन्तर्गत बैंकों को सशक्त घनात्मक भूमिका अदा करने हेतु आगे आने को आगाह किया गया था

बैंकों का राष्ट्रीयकरण

19 जुलाई 1969 को 14 तथा 15 अप्रैल 1980 को 6 बड़े वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण करके सरकार ने अपनी प्रगतिशील सामाजिक आर्थिक नीतियों में एक नया अध्याय जोड़ा। इस दृष्टिकोण के अनुरूप भारतीय रिजर्व बैंक ने सभी बैंकों से कहा है कि वे अपने-अपने ऋणों का 40 प्रतिशत प्राथमिक क्षेत्रों जैसे-कृषि, लघु उद्योग एवं लघु ऋणियों को प्रदान करें। यह नीति स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि बैंक अब सशक्त रूप से कमजोर लोगों की सहायता के लिये हैं न कि आर्थिक रूप से धनिक लोगों के लिए।

1970 के दशक से बैंकिंग नीति, विकास, आय की असमानताओं में कमी, आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण में कमी एवं बैंकिंग सुविधाओं में प्रगतिशील कमी के प्रति उन्मुख रही है। परिणामस्वरूप बैंकिंग नीति का विकासात्मक पहलू प्रभुत्व में आ गया है। अन्य बातों के अतिरिक्त बैंकिंग विकास में अन्तः क्षेत्रीय असन्तुलन में कमी के लिए शाखा – विस्तार नीति को एक साधन के रूप में काम में लाया गया। इसमें ऐसे क्षेत्रों में शाखायें खोली गयीं जिनमें पहले से बैंकों की शाखायें नहीं थीं। जून 1969 में वाणिज्यिक बैंकों की शाखाओं की संख्या – 8262 थी वह बढ़कर दिसम्बर 1985 में 52,398 हो गई। ग्रामीण शाखाओं की संख्या 1833 से बढ़कर 30,944 हो गई। शाखाओं के व्यापक विस्तार से प्रत्येक शाखा पर सेवा प्राप्त करने वाले लोगों की संख्या घटी है जैसे जून 1969 में हर बैंक शाखा पर 65,000 लोगों की सेवा प्रदान की जाती थी परन्तु दिसम्बर 1985 में हर बैंक से सेवा प्राप्त करने वाले व्यक्तियों की संख्या 13,000 थी।

राष्ट्रीयकरण के पश्चात् ग्रामीण शाखाओं के विस्तार पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया गया है। शाखाओं के विस्तार के आकर्षक योजनाओं के फलस्वरूप अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों में कुल जमा राशि जून 1969 के 4665 करोड़ रुपये से बढ़कर दिसम्बर 1985 तक 83721 करोड़ रुपये हो गई अर्थात् इस अवधि में जमा राशियों में 18 गुना वृद्धि हुई। ग्रामीण क्षेत्रों में जमा पर अधिक जोर देने के कारण जमा राशियों में काफी वृद्धि हुई है। जून 1969 और मार्च 1985 के बीच ग्रामीण जमा राशियों में 68 गुना से भी अधिक की वृद्धि हुई। परिणामस्वरूप कुल जमाराशियों में ग्रामीण जमा राशियों का हिस्सा जून 1969 के 3.1 प्रतिशत से बढ़कर मार्च 1985 में 13.6 प्रतिशत हो गया। इस प्रकार बैंकों की जमाराशियों में काफी वृद्धि हुई है। जमाराशियों का राष्ट्रीय आय से अनुपात जून 1969 में 15.2 प्रतिशत से बढ़कर दिसम्बर 1985 में 48.9 हो जाना बैंकिंग उद्योग के बचतों के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान का सूचक है।

बैंकिंग प्रणाली में कुल ऋण जून 1969 में 3609 करोड़ रुपये के मुकाबले दिसम्बर 1985 में 53231 करोड़ रुपये हो गया, इस प्रकार 15 गुना वृद्धि हुई। बैंकों ने राष्ट्रीयकरण के बाद की अवधि में ग्रामीण ऋणों को काफी प्रोत्साहन दिया। परिणामस्वरूप ग्रामीण ऋणों में 13.1 प्रतिशत तक की वृद्धि हुई। जिन क्षेत्रों में पहले बैंकिंग सुविधायें बहुत सीमित थी उनमें ऋण वितरण में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। मार्च 1968 को कृषि एवं सम्बद्ध कार्यकलापों तथा लघु उद्योगों का हिस्सा कुल ऋण वितरण में क्रमशः 2.2 तथा 6.9 प्रतिशत था जो बढ़कर मार्च 1985 में क्रमशः 16.0 तथा 13.8 प्रतिशत हो गया। जबकि इन्हीं अवधियों के लिए बड़े तथा मध्यम उद्योगों में ऋण वितरण का प्रतिशत 60.6 से घटकर 33.2 रह गया।

प्राथमिक क्षेत्रों को ऋण

राष्ट्रीयकरण के पश्चात् कृषकों, लघु क्षेत्र के उद्योगपतियों, छोटे व्यापारियों, परिवहन संचालकों, पेशेवर स्वरोजगार में लगे व्यक्तियों तथा अन्य छोटे-छोटे उधार लेने वाले लोगों को ऋणों में प्राथमिकता दी गयी है। बैंकिंग प्रणाली द्वारा जून 1969 में प्राथमिकता वाले क्षेत्रों को 441 करोड़ रुपये का ऋण दिया जो बढ़कर सितम्बर 1985 में 19208 करोड़ रुपये हो गया। इस प्रकार कुल ऋण में इस क्षेत्र का प्रतिशत 14.6 से बढ़कर 42.7 हो गया। प्राथमिकता क्षेत्र के ऋण खातों की संख्या 2.6 लाख से बढ़कर 229.27 लाख हो गयी।

अतः अर्थव्यवस्था की ऊँचाइयों को नियन्त्रित करके तथा राष्ट्रीय नीति एवं उद्देश्यों के समरूप अर्थव्यवस्था में विकास की आवश्यकताओं को प्रगतिशील ढंग से पूरा करके बैंकिंग व्यवस्था ने ग्रामीण विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

अग्रणी (लीड) बैंक योजना

रिजर्व बैंक द्वारा दिसम्बर 1969 में अग्रणी बैंक योजना लागू की गई। अग्रणी बैंक का प्राथमिक कार्य शाखाओं का तीव्र एवं विस्तृत विस्तार एवं ग्रामीण क्षेत्रों में सरलतम पहुंच सुनिश्चित करना है। यह योजना बड़े पैमाने पर जमाओं की गतिशीलता तथा अर्थव्यवस्था के कमजोर वर्ग को दिये जाने वाले ऋणों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से ओतप्रोत रही है।

अग्रणी बैंक योजना में बैंकों को स्थानीय विकास की जिम्मेदारी सौंपकर, इन्हें विकास के महत्वपूर्ण साधन बनाने पर जोर दिया गया है। ये बैंक विकास केन्द्र को चिन्हित करते हैं, जमा सम्भाव्यता एवं साख अन्तराल को इंगित करते हैं तथा उस क्षेत्र में क्रियाशील अन्य वित्तीय एवं विकास अभिकरणों के परामर्श से प्रत्येक जिले के लिये साख-प्रवाह का समन्वित कार्यक्रम निर्मित करते हैं। इस अर्थ में अग्रणी बैंक योजना ने क्षेत्रीय साख नियोजन के तहत बैंकिंग क्रियाकलापों को विकासोन्मुख दृष्टिकोण प्रदान किया है। समय-समय पर रिजर्व बैंक द्वारा बनाई गई लाइसेंस नीति इस तथ्य की पुष्टि करती है कि अधिक क्षेत्रीय सन्तुलन कायम करने हेतु बैंक सुविधाओं के नियोजित प्रसार को अग्रणी बैंक योजना के माध्यम से रेखांकित किया गया है।

बैंकों द्वारा रोजगार सृजन

सातवीं पंचवर्षीय योजना में 40 मिलियन स्टेण्डर्ड-व्यक्ति-वर्ष तक का रोजगार बढ़ाने के लक्ष्य रखे गये हैं। ऋण कृषि सहायक क्षेत्रों, लघु एवं ग्रामीण उद्योगों, असंगठित, सेवाओं एवं छोटे व्यवसायों को प्रदान किया जाता है। इन सभी क्षेत्रों में काफी मात्रा में साख-संभाग निहित हैं। अतः योजना लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सभी स्वरोजगार क्षेत्रों में साख-नियोजन एक जीवन्त प्रक्रिया है क्योंकि साख का एक बड़ा भाग बैंकों से प्राप्त होगा। बैंकों ने खुदरा व्यापार, ग्रामीण कलाकारों, ग्रामीण दस्तकारों एवं दूसरे व्यवसायों के लिए योजनायें तैयार की हैं। सितम्बर 1985 की समाप्ति तक कमजोर वर्ग के लोगों को सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों ने 4410.33 करोड़ रुपये का ऋण दिया जो प्राथमिकता क्षेत्र के कुल ऋण का 23.0 प्रतिशत या कुल अग्रिम ऋणों का 9.8 प्रतिशत है। सर्वाधिक कमजोर लोगों को सहायता देने के उद्देश्य से बैंकों ने विभेदित ब्याज की दर योजना शुरू की है। इस योजना के अन्तर्गत आमदनी बढ़ाने वाली कोई सक्षम परियोजना शुरू करने के लिए बैंकों द्वारा 4 प्रतिशत वार्षिक की रियायती ब्याज-दर पर वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जाती है, इसकी प्राप्ति हेतु ग्रामीण क्षेत्र के व्यक्तियों की सभी स्रोतों से आय 2000 रु. वार्षिक से अधिक नहीं होनी चाहिए।

1983 में प्रारम्भ की गई शिक्षित बेरोजगार युवाओं के लिए स्वरोजगार उपलब्ध कराने की योजना के तहत बैंकों द्वारा उद्योग, सेवाओं तथा व्यवसाय में अपना रोजगार शुरू करने के साधन उपलब्ध कराकर शिक्षित बेरोजगार युवाओं की बड़े पैमाने पर बेरोजगारी दूर की है। वर्ष 1984-85 में बैंकों ने 2.29 लाख लाभभोगियों को 428.53 करोड़ रुपये के ऋण मंजूर किये।

केन्द्रीय सरकार ने अब तक ग्रामीण विकास के लिये विभिन्न परियोजनायें एवं योजनायें आरम्भ की हैं ताकि ग्रामीण निर्धनों तथा ग्रामीण धनियों के मध्य अन्तर को कम किया जा सके। ये योजनाएं हैं – एस.एफ.डी.ए., एम.एफ.ए.एल., डी.पी.ए.डी., कमाण्ड क्षेत्र विकास परियोजना (सी.ए.डी.पी.) सघन कृषि जिला कार्यक्रम (डी.ए.डी.पी.) आदिवासी व पहाड़ी विकास परियोजनायें एवं ग्रामीण रोजगार के लिए शीघ्र कार्यक्रम आदि।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई.आर.डी.पी.)

ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों को संस्थागत ऋण व सहायता के माध्यम से मदद करने के उद्देश्य से 1978-79 से यह कार्यक्रम प्रारम्भ किया

गया है जिससे वे उत्पादक परिसम्पत्तियां अर्जित कर सकें। प्रारम्भ में यह 2300 प्रखण्डों में शुरू किया गया था परन्तु 2 अक्तूबर 1980 से यह कार्यक्रम देश के सभी 5011 प्रखण्डों में चलाया जा रहा है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत गांवों में गरीबी को पशु, कृषिगत उपकरण, प्रशिक्षण, ऋण तथा तकनीकी सहायता उपलब्ध कराने का प्रावधान है।

गांव को गोद लेने की योजना

वित्तीय संस्थान विशेषकर बैंकों द्वारा वित्त उपलब्ध करवाने के ग्रामीण विकास कार्यक्रम के रूप में गांवों को गोद लेने की योजना शुरू की गई। जिससे विभिन्न अवस्थाओं में ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सभी पहलुओं के विकास का कार्यक्रम चालू किया गया। जून 1983 को गोद लिये गये गांवों की संख्या 141042 थी तथा 50 लाख प्रत्यक्ष कृषि ऋण खातों में 1557 करोड़ रुपये की कुल धनराशि उपलब्ध कराई गई।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना 1975 में ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास के उद्देश्य से की गई थी ताकि ग्रामीण समाज के निर्धन वर्ग विशेषकर लघु व सीमान्त कृषक, भूमिहीन श्रमिक, ग्रामीण दस्तकार, अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति तथा इसी तरह के अन्य लोगों की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों से यह आशा की गई थी कि वे ग्रामीण क्षेत्रों में प्रवर्तमान संस्थागत वित्त व्यवस्था में नवीन आयाम जोड़ेंगे न कि उनको प्रतिस्थापित करेंगे। अब ये बैंक ग्रामीण साख ढांचे के अन्तरंग भाग बन चुके हैं एवं उनका निष्पादन भी प्रशंसनीय है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना बैंकों पर लागू किये गये सामाजिक नियन्त्रण की परिणति कही जा सकती है। ये बैंक कम लागत व स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप होने तथा कमजोर वर्ग के लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के कारण इनकी कार्य क्षमता सराहनीय है। शायद यही कारण है कि रिजर्व बैंक की 1985-90 की लाईसेंस-नीति में ग्रामीण क्षेत्रों में शाखाओं की स्थापना पर अधिक बल दिया गया है।

प्रत्येक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक एक-सी कृषि जलवायु तथा ग्रामीण ग्राहकों वाले एक या दो जिलों में कार्यरत है। हरेक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक एक अनुसूचित व्यापारिक बैंक या राज्य सहकारी बैंक द्वारा प्रायोजित होता है।

इस प्रकार हैं :—

1. ये बैंक अपने परिचालक क्षेत्र में सम्भावित विकास केन्द्रों को चिन्हित करते हैं।
2. गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे परिवारों तथा विभिन्न समूहों के लोगों का चयन करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में परिवार वार सर्वेक्षण करते हैं। इसके लिए ये अपनी प्रत्येक शाखा के चारों ओर स्थित, गांवों के समूहों को गोद लेते हैं।
3. आय बढ़ाने एवं रोजगार सृजन के उद्देश्य से परिवार के मुखियाओं से विचार विमर्श कर परिवार के लिए उत्पादन कार्यक्रमों का निर्माण।
4. औद्योगिक घरानों/एच्छिक सेवा संगठनों से अन्तः संरचना हेतु उनका सहयोग प्राप्त करना तथा ऐसी गैर शोषक संस्थाओं को विकसित करना जो विभिन्न पड़तों एवं विपणन सुविधाओं में ग्रामीण परिवारों की सहायता कर सकें।
5. प्रबन्धकीय सेवा, विपणन सहायता तथा ग्रामीण परिवारों के लाभ हेतु व्यवस्थायें करना।
6. योजनाओं के कार्य की समीक्षा के लिए आवश्यक अनुवर्तन कार्यवाही करना।

अपनी स्थापना के बाद से अब तक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों ने विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति की है। जहां दिसम्बर 1975 में इनकी संख्या 40, शाखाऐं-489, जमा रकम 7.7 करोड़ रु., ऋण 7.0 करोड़ रु. व ऋण तथा जमा रकम का अनुपात 90.9 था जो बढ़कर 1985 में क्रमशः 188 (यह संख्या 1987 में बढ़कर 194 हो गई है), 12139,1057 करोड़ रु., 1188 करोड़ रु. तथा 113.0 हो गये।

उपर्युक्त विश्लेषण से विदित होता है कि भारत में आधुनिक अर्थव्यवस्था में ग्रामीण विकास के सन्दर्भ में बैंकिंग व्यवस्था की भूमिका अनिवर्चनीय है। अर्थव्यवस्था की सम्पूर्ण मशीनरी में बैंक स्नेहक का काम करते हैं। यदि हम ऐसे युग की कल्पना करें जिसमें बैंकिंग व्यवस्था नहीं थी तो हमें सहज भाव से गांवों के त्वरित विकास में बैंकों की भूमिका समझ में आ जाती है।

आयोजना अधिकारी
बैंक ऑफ बड़ोदा
राजस्थान अंचल, जयपुर

केन्द्रीय बजट और ग्रामीण विकास

जितेन्द्र गुप्त

"कृषि को अगले दो-तीन सालों में एक जोरदार नया प्रोत्साहन दिया जाए जिसमें छोटे और सीमांत किसानों, भूमिहीनों और ग्रामीण दस्तकारों पर खास ध्यान दिया जाए। हमारी यह भी कोशिश हो कि ऐसी जो भी योजना देहात के विकास के लिए बने , वह देश के हर हलके के लिए ही नहीं बल्कि देहात में हर तबके के लिए भी बने। इससे पूरे समाज की ताकत बनेगी, पूरे समाज को इसका लाभ मिलेगा और पूरा समाज आगे बढ़ेगा।"

– राजीव गांधी

1988-89 का बजट सरकार के पिछले बजटों से कई अर्थों में अलग है, लेकिन हम यहाँ केवल गाँव, किसान और कमजोर वर्गों के लिहाज से बजट प्रावधानों की चर्चा करेंगे। इस बजट में देहाती इलाकों में रहने वालों पर पहले से कहीं अधिक ध्यान दिया गया है। इसका सबसे बड़ा कारण है पिछले साल का भयानक सूखा, जिसने हमारी अर्थव्यवस्था की कमजोरियां एकदम से उजागर कर दीं। यह बात सही है कि सरकारी भंडारों में सवा दो करोड़ टन से भी ज्यादा अनाज था, इसलिए भुखमरी की नौबत नहीं आई। खाद्य तेलों आदि के आयात के कारण थोक भाव दस फीसदी से अधिक नहीं बढ़े, लेकिन सूखे वाले इलाकों में बड़े पैमाने पर राहत कार्य करने पड़े जिनमें अरबों रुपया खर्च हुआ। सरकार ने महसूस किया कि विकास की रफ्तार या आमदनी के बंटवारे का ढांचा ऐसा नहीं है कि देहाती इलाकों में अपने आप खुशहाली आ जाये, इसीलिए सूखे के बाद पहले बजट में खेती और रिहायशी मकानों के लिए अधिक पूंजी मुहैया करने, सामाजिक सुरक्षा की योजनाएं बनाने और ग्रामीण उद्योग धंधों की तरफ विशेष रूप से ध्यान दिया गया है। समाज के पिछड़े और कमजोर वर्गों को सामाजिक न्याय देने की कोशिश से मीनमेख निकालने वाले सन्तुष्ट नहीं होंगे। वे कह सकते हैं कि छोटे किसानों और कमजोर वर्गों पर कुछ खर्च कर देने से गरीबी दूर नहीं हो जायेगी या खेती की पैदावार नहीं बढ़ जायेगी। वे यह भी कह सकते हैं कि किसानों के आंदोलन के कारण यह सब किया गया है। इसका जवाब यही हो सकता है कि दबावों को स्वीकार करना लेकतंत्र का मर्म है, दूसरे इस बजट से पहले शुरू की गई योजनाओं को बल मिलेगा। इसके अलावा भविष्य में इन योजनाओं का आकार बढ़ता जायेगा और हो सकता है कि कुछ नई योजनाएं शुरू करनी पड़ें। इसलिए इस वर्ष के बजट प्रावधानों का स्वागत होना चाहिए।

सबसे पहले खेती और सिंचाई को लें। इन क्षेत्रों की योजनाओं पर अगले वित्त वर्ष में पिछले वर्ष से बहुत अधिक रकम खर्च की जायेगी। इतनी बढ़ोतरी किसी और क्षेत्र में नहीं हुई है। सिंचाई के स्थाई साधन विकसित करने में वक्त लगता है, फिर भी सूखा प्रभावित क्षेत्रों में छोटे और सीमांत किसानों को मदद के लिए "जलधारा" नामक एक कार्यक्रम बनाया गया है। इसके तहत हजारों किसानों को बहुत मामूली किराये पर सिंचाई के लिए पम्पसेंट मुहैया कराए जाएंगे। सूखे ने यह भी जता दिया कि खेतिहरों के लिए सस्ती पूंजी की व्यवस्था जरूरी है, इसलिए सात हजार पांच सौ रुपये या इससे कम राशि के फसल ऋणों पर ब्याज की दर डेढ़ से ढाई फीसदी घटा दी गई है। साढ़े सात से पन्द्रह हजार रुपये के कर्जों पर भी ब्याज की दरों को घटाकर साढ़े ग्यारह फीसदी कर दिया गया है।

सकल ऋण राशि बढ़ाने और ज्यादा लोगों को कर्ज देने

के आदेश दे दिए गए हैं। बैंक ही हर शाखा अपने क्षेत्र में ऋण देने का व्यापक बंदोबस्त करेगी। उर्वरकों के भाव में भी साढ़े सात फीसदी की कटौती की गई है। इसके चलते एक बोरे यूरिया की कीमत आठ रुपये अस्सी पैसे कम हो जायेगी। कीट और खर-पतवार नाशक दवाईयों पर आयात शुल्क घटा दिया गया है। इनको अगर सहकारी या सरकारी संगठन आयात करना चाहें तो उन्हें इजाजत मिल जायेगी।

खेतिहरों के लिए ही नहीं समाज के दूसरे कमजोर वर्गों के लिए भी वित्त मंत्री श्री नारायण दत्त तिवारी ने सामाजिक सुरक्षा की योजना बनाई है। जीवन बीमा निगम एक अरब रुपये की राशि से एक सामाजिक सुरक्षा कोष बनायेगा। इससे दिहाड़ी पर काम करने वाले भूमिहीन मजदूरों, बुनकरों, रिक्शाचालकों, ड्राइवरों आदि का बीमा किया जायेगा। किस्त का आधा पैसा ये लोग खुद भरेंगे और आधा पैसा सामाजिक सुरक्षा कोष से दिया जायेगा। नियमित आमदनी वाले प्राइमरी स्कूल के अध्यापकों, वाणिज्य प्रतिष्ठानों के कर्मचारियों तथा दस्तकारों आदि के लिए सामूहिक बीमा योजनाएं बनाई जायेंगी।

अनुसूचित जातियों और जनजतियों के लोगों के लिए एक राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति वित्त और विकास निगम होगा। इसकी पूंजी पचास करोड़ रुपये होगी। यह निगम रोजगार के नये अवसर पैदा करने वाली स्कीमें बनायेगा और उनके लिए पैसा देगा। राष्ट्रीयकृत बैंकों और राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक भी इसमें मदद करेंगे।

इस वर्ग के लोगों के लाभ के लिए आबंटित राशि दस से बीस प्रतिशत करके दस लाख कुंए खोदने की व्यवस्था की जायेगी। यह कार्य राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम और ग्रामीण रोजगार गारंटी कार्यक्रम के तहत किया जायेगा। इनका दोहरा लाभ होगा – पीने के पानी की समस्या भी सुलझेगी और लाखों छोटे और सीमांत किसानों के खेतों में पानी पहुंचने लगेगा। हरिजनों, अनुसूचित जातियों और गरीबी रेखा से कम आमदनी वाले पाँच लाख परिवारों के लिए "कुटीर ज्योति" योजना का महत्व केवल प्रतीकात्मक नहीं है, सरकार उनके घरों या झोपड़ियों तक बिजली के तार पहुंचाने और एक प्वाइंट लगाने का खर्च खुद उठायेगी।

बिजली के साथ सरकार देहाती इलाकों में आवास के लिए कई साधनों से पूंजी मुहैया कराने जा रही है। पिछले वर्ष बना राष्ट्रीय आवास बैंक तुरन्त काम शुरू कर देगा। अगर जरूरी समझा गया तो समूची अतिरिक्त रकम ग्रामीण आवास को बढ़ावा देने और ग्रामीण आवास बचत कर्ज संस्थानों को बनाने में खर्च की जायेगी। भूमि विकास बैंक भी इस काम में हाथ बटाएंगे। सात सौ साये तक मासिक आमदनी वाले छोटे और गरीब किसानों को घर बनाने या उनकी मरम्मत के लिए सात फीसदी ब्याज पर कर्ज दिया जायेगा। हुडको ग्रामीण आबादी पर्यावरण सुधार कार्यक्रम चलायेगा ताकि निकासी और सफाई का स्तर सुधरे। सातवीं योजना पूरी होते-होते व्यापारिक बैंक भी आवास के लिए तीन अरब रुपये कर्ज देंगे। अगले वित्त वर्ष में सौ केन्द्र बनेंगे जो कम लागत पर घर बनाने का सामान और तकनीक मुहैया करेंगे।

कुछ अन्य प्रावधानों का फायदा खेतिहरों को होगा। मसलन बागवानी, मुर्गी और मधुमक्खी पालन के काम आने वाली मशीनरी और उपकरणों पर उत्पादन शुल्क नहीं लगेगा। इसी प्रकार ग्रामीण खादी बोर्ड के तहत जैम, जेली, धोने के साबुन आदि बनाने को सहकारी उत्पादन समितियों को प्रोत्साहन दिया गया है। सिंचाई के काम आने वाले पम्पसेटों में इस्तेमाल होने वाली बिजली की मोटरों को उत्पादन शुल्क से मुक्त कर दिया गया है। खाद्य पदार्थों के भंडारण की सुविधा के लिए प्रशीतन संयंत्रों की स्थापना में काम आने वाले हिस्सों-पुर्जों पर शुल्क घटा दिया गया है।

खेती के बाहर रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिए विशेष स्कीम बनायी जा रही है। निर्दिष्ट उत्पाद तथा रेडियो कैसेट प्लेयर आदि वोल्टेज स्टैबलाइजर और 75 रुपये से कम लागत वाले जूतों को उत्पाद शुल्क से पूरी तरह मुक्त कर दिया गया है। खेती के बाहर रोजगार के अवसर बढ़ाने से वैकल्पिक रोजगर मिलते हैं जिससे खेती पर आबादी का बोझ घटता है। इस लिहाज से लघु उद्योग विकास बैंक बनाने की घोषणा भी स्वागत योग्य है।

बजट-चमत्कार नहीं कर सकता, लेकिन समय-समय पर विशेष क्षेत्रों और वर्गों का उत्साह बढ़ा सकता है। सरकार ने देहाती इलाकों में इस बजट के जरिए आशा का संचार किया है। अगर प्रशासनिक मशीनरी बजट प्रावधानों को ठीक से अंजाम दे तो लोगों को उसके पूरे फायदे मिल सकते हैं। □

ऋण वितरण में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का योगदान

वाई गांगी रेड्डी

भारत सरकार द्वारा नियुक्त नरसिंहमन् कमेटी ने क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का मुख्य उद्देश्य आमतौर पर ग्रामीण लोगों को और खासतौर पर छोटे व सीमान्त किसानों, खेतिहर मजदूरों, ग्रामीण शिल्पियों और छोटे उद्यमियों के लिए ऋण सुविधाऐं प्रदान करना बताया है। यद्यपि, राष्ट्रीयकृत वाणिज्यिक बैंकों को गांवों में इन वर्गों के लोगों के लिए ऋण सुविधायें देने का काम सौंपा गया है, लेकिन इसको एक विशेष स्रोत के द्वारा दिया जाना उचित समझा गया। ऐसा स्रोत जो कि साथ-साथ गांवों की बचत को गांवों के विकास में लगवा सके। ग्रामीण क्षेत्रों की आत्मनिर्भरता या विकास के लिये ऐसा विचार किया गया कि ग्रामीण क्षेत्रों में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना से इन क्षेत्रों की बचत को वहां के कमजोर वर्गों की ऋण सुविधा के लिये लगाया जा सके।

आन्ध्र प्रदेश के अनन्तपुर जिले में 1979 में स्थापित श्री अनन्तपुर ग्रामीण बैंक इसी सोच पर आधारित है। यह बैंक जिले के एक प्रमुख सिंडीकेट बैंक के सौजन्य से स्थापित हुआ है। इस बैंक ने काफी अधिक संख्या में लोगों को जिनमें अनुसूचित जातियां, अनुसूचित जनजतियां, शिल्पकार व पिछड़े वर्ग के लोग हैं, ऋण सुविधाएं प्रदान की हैं। इस अध्ययन में निम्नलिखित चीजों को जांचने की एक नेक कोशिश की गई है -

1. विभिन्न कमजोर लोगों के बीच ऋण के वितरण का ढंग,
2. बचत के विस्तार की सीमा, और
3. श्री अनन्त ग्रामीण बैंक के द्वारा अनन्तपुर जिले में कमजोर लोगों में बांटे जा सकने वाले ग्रामीण बचत की सीमा।

इस ग्रामीण बैंक की पहली शाखा 1979 में लेपाक्षी में खोली गई थी। अब इस बैंक की लगभग 70 शाखायें हैं। प्रत्येक शाखा के अन्तर्गत लगभग 19 गांव आते हैं। जिले में इस बैंक की बढ़ती शाखा संख्या के बढ़ते कार्यकलाप को देखकर यह सोचा जा सकता है कि कमजोर वर्गों के बहुत अधिक लोग इन बैंकों से लाभान्वित होते हैं। जिले के ग्रामीण बैंक के कार्यकलाप का पिछले पहरे में दिये गये उद्देश्यों के तहत अध्ययन दिलचस्प होगा।

ऋण वितरण का ढंग

यहां जिले में बैंक के द्वारा कमजोर वर्गों से सम्बन्धित लोगों को दिये गये ऋण के वितरण पर विचार किया जा रहा है। महत्वपूर्ण बात यह है कि छोटे किसानों को प्रतिवर्ष दिये जाने वाला ऋण किसी दूसरे समुदाय को दिये जाने वाले ऋण के मुकाबले अधिक है। ग्रामीण शिल्पकारों को दिया गया हिस्सा कुल भुगतान का काफी कम भाग है। कमजोर वर्गों में इस प्रकार के भुगतान का एक वर्ग को अधिक वितरण का ढंग संभवतया प्रत्येक वर्ग की आबादी के अनुपात के कारण है।

बैंक के द्वारा छोटे किसानों को दी गई ऋण सुविधा दूसरे वर्गों की संख्या के मुकाबले अधिक है। खेतिहर मजदूरों के अलावा छोटे किसानों को प्रति व्यक्ति भुगतान अन्य समुदाय के लोगों के मुकाबले काफी ज्यादा है। दूसरे समुदायों के मुकाबले में प्रति खेतिहर मजदूर को भुगतान अधिक मालूम होता है। फिर भी संख्या के हिसाब से दूसरे कमजोर वर्गों के मुकाबले खेतिहर मजदूरों को दी जाने वाली ऋण सुविधा काफी कम है। सीमान्त किसानों को दिया जाने वाला कुल ऋण प्रति वर्ष खेतिहर मजदूरों, ग्रामीण शिल्पकारों और व्यापारियों के मुकाबले अधिक है। फिर भी, इनको दिया जाने वाला प्रति व्यक्ति ऋण छोटे किसान और खेतिहर मजदूरों की अपेक्षा कम है।

इस प्रकार संख्या के हिसाब से ऐसा लगता है कि जिन लोगों को ऋण सुविधायें दी गई हैं उनमें छोटे किसानों को दूसरे कमजोर वर्गों के मुकाबले अधिक लाभ पहुंचा है। भुगतान के हिसाब से लगता है कि खेतिहर मजदूरों को अधिक लाभ मिला है। ऐसा शायद इस तथ्य के कारण हो सकता है कि मजदूरों, जिनको ऋण की सुविधा के लिये विचार किया गया हो, की संख्या दूसरे कमजोर वर्गों के मुकाबले में बहुत कम है। इस प्रकार इस विचार से यह विषय

सामने आता है कि क्या व्यक्तिगत कार्यकलाप को जीवित रखने के कार्य के लिए प्रति व्यक्ति ऋण भुगतान पर्याप्त शर्त है। हो सकता है कि बैंक अपेक्षतया अधिक संख्या में छोटे किसानों को ऋण भुगतान करने में सफल हुआ हो, लेकिन इस प्रश्न का उत्तर अभी बाकी रहता है कि जिस सीमा तक छोटे किसानों को ऋण दिया गया है वह उनके अपने कृषि कार्यक्रम को जिन्दा रखने के लिये पर्याप्त है। जहां तक ग्रामीण शिल्पियों के कार्यक्रम के लिये भुगतान का प्रश्न है वह उतना प्रभावपूर्ण नहीं है जितनी अपेक्षा की जाती है। 1981 में कुल भुगतान का केवल 6% भाग ग्रामीण शिल्पियों को दिया गया। छः साल के बाद भी यह मुश्किल से बढ़ पाया है। ऐसा प्रतीत होता है कि जिले में ग्रामीण औद्योगिक कार्यकलाप (ग्रामीण शिल्प कार्यकलाप) जिसके विकास की बहुत संभावनायें हैं, पर गंभीरता पूर्वक ध्यान नहीं दिया गया। उद्योग और ग्रामीण शिल्प कार्यों के विकास के लिये ऋण का भुगतान बहुत ही गैर आनुपातिक है। यह ठीक है कि अधिक अनुपात में धन कृषि क्षेत्र में लगाया जाना चाहिये लेकिन अनन्तपुर जैसे जिले में जो कि बुनियादी तौर पर एक अकाल वाला जिला है वहां पर अधिक धन उद्योग और ग्रामीण शिल्प क्षेत्रों में लगाये जाने की आवश्यकता है। जिले की इस तरह की कृषि जलवायु की अवस्था में उद्योग और शिल्प कार्यों के विकास के लिये बहुत गुंजाइश दिखाई देती है। लेकिन अगर इस क्षेत्र के लिये धन उपलब्ध नहीं कराया जाता है तब औद्योगिक कार्यों के विकास की संभावनायें बैंक पर चली जायेंगी।

जातियों के अनुसार ऋणों का भुगतान

अनन्तपुर जिले की कमजोर वर्गों की अधिकतर आबादी अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा पिछड़े वर्गों की है। साधारणतया यह विश्वास किया जाता है कि इन वर्गों को जो ऋण दिया जाता है वह कमजोर वर्गों के दूसरे समुदायों के मुकाबले अधिक है लेकिन अनन्तपुर जिले के बारे में ऐसा नहीं है। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और पिछड़ी जातियों के कुल लोगों को जो ऋण की सुविधा दी जाती है वह आर्थिक तौर पर कमजोर लोगों के उच्च वर्गों के मुकाबले कम है। हांलाकि कमजोर वर्गों की कुल आबादी का तीन चौथाई भाग अनुसूचित जनजति तथा पिछड़ी जाति के लोगों से बनता है, तब भी इन लोगों को दिया जाने वाला कुल ऋण उच्च वर्ग के कमजोर लोगों को दिये जाने वाले ऋण से बहुत कम है। इस विचार से यह तथ्य स्थापित होता है कि ऋण वितरण के मामले में कमजोर वर्गों में भी अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के मुकाबले उच्च वर्ग को प्राथमिकता दी जाती है। उच्च वर्ग के कमजोर लोगों के पक्ष में निम्नलिखित बातें कही जा सकती हैं:

1. कमजोर वर्ग के इस समुदाय की अपेक्षतया बैंकों में अधिक पहुंच।

2. तथाकथित निचले वर्गों के मुकाबले इनके पास जमीन का होना।

ऋण प्राप्त करने की योग्यता के संदर्भ में, भूमि-स्वामित्व ही एक मात्र मापदण्ड नहीं होना चाहिए। उदाहरण के लिये कोई व्यक्ति जमीन का स्वामी न हो लेकिन वह एक घरेलू उद्योग पर आधारित उत्पादन इकाई या छोटी व्यापारिक इकाई खोल सकने के योग्य है तब उसकी संभावनाओं से उसके ऋण लेने की क्षमता देखी जानी चाहिये। अगर दूसरे मापदण्ड को उचित महत्व दिया जाये तब ऋण का वितरण भिन्न-भिन्न जाति के लोगों में गैर आनुपातिक नहीं होगा। तथाकथित कमजोर वर्ग के लोगों में भी जो ऋण पिछड़े लोगों को दिया जाता है वह अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के मुकाबले अपेक्षतया अधिक है शायद ऐसा इसलिये है कि वास्तव में पिछड़े वर्ग के लोगों के पास अनुसूचित जाति, जनजाति के मुकाबले अधिक जमीन है। वितरण के मामलों में पिछड़ी जाति के लोगों को उद्योग और शिल्प क्षेत्र के लिए कमजोर वर्गों को दूसरे समुदायों के मुकाबले अधिक ऋण दिया जाता है। यद्यपि उद्योग के क्षेत्र में अनुसूचित जाति के लोगों को ऋण वितरण में कुछ सुधार हुआ है लेकिन यह इतना प्रभावी नहीं है जितना होना चाहिये। अगर गैर-कृषि क्षेत्रों के विकास की संभावनाओं के बारे में जैसा कि ऊपर विचार किया गया है ऋण-क्षमता को आंका जाये तब अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजातियों के लोगों को उद्योगों तथा शिल्प कार्यों के लिये कुल ऋण में से अधिक भाग मिलना चाहिये। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अगर ऋण क्षमता के लिये दूसरे मापदण्डों के बारे में अपना पक्षपातपूर्ण रवैया खत्म करें तब अपने उद्देश्यों को पूरा कर सकते हैं।

हमने पिछले खण्डों में देखा कि पक्षपातपूर्ण रवैया दो स्तरों पर है। कमजोर वर्गों में उच्च जाति और निम्न जाति की आबादी के लोगों को ऋण भुगतान पर यह बात सामने आयी है कि उच्च जाति के लोगों को निम्न के मुकाबले प्राथमिकता दी जाती है।

दूसरे स्तर पर पिछड़ी जाति के लोगों को अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के मुकाबले प्राथमिकता दी जाती है। इस प्रकार का पक्षपातपूर्ण रवैया संभवतया केवल भूमि के अधिकार को ऋण लेने की क्षमता का मापदण्ड मानता है।

जैसा कि सर्वविदित है क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक कमजोर लोगों की ऋण की जरूरतों को पूरा करने के लिये स्थापित किये गये हैं। हो सकता है कि परिभाषा के अनुसार कमजोर लोगों की ऋण लेने की क्षमता न हो। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की यह जिम्मेदारी है कि वे उधार लेने की क्षमता बढ़ाने के लिये ऐसी शर्तें बनायें जिससे कमजोर लोगों के विकास के कार्यक्रम संभव हो सकें। अगर ऐसा किया गया और तदानुसार ऋण दिया गया तब उम्मीद की जानी चाहिये कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अपने निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त कर लें।

अनुवाद : अजेय मेहरोत्रा
297, श्याम पार्क (मेन)
साहिबाबाद, जिला-गाजियाबाद

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
का
भाषायी एकता में बढ़ता कदम

आदान प्रदान पुस्तक माला की श्रेष्ठ, अल्पमोली पुस्तकें

अतीत के दिन	के.पी. कृष्ण मेनन	रु. 28.50
इक्कीस बंगला कहानियां	अरुण कुमार मुखोपाध्याय	रु. 14.25
नये हिंदी लघु नाटक	नेमिचंद्र जैन	रु. 14.50
किनु ग्वाले की गली	संतोष कुमार घोष	रु. 9.00
गति और रेखा	विद्या निवास मिश्र	रु. 9.50
जीवन एक नाटक	पन्नालाल पटेल	रु. 16.50
दाना पानी	गोपीनाथ महांति	रु. 14.75
पूर्ण कुंभ	रानी चांद	रु. 10.25
आखिर जो बचा	बुच्चि बाबू	रु. 9.50
उर्दू कहानियां	रज़िया सज्जाद ज़हीर	रु. 19.50
सुदामा के चावल	श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर	रु. 12.00

संपर्क

बिक्री प्रबन्धक
नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
ए-5, ग्रीन पार्क,
नई दिल्ली-110016

ग्रामीण ऋण प्रणाली विकास प्रगति तथा समस्याएं

ए.आर.पटेल
परियोजना अधिकारी,
कृषि वित्त निगम, बम्बई

स्वातंत्र्योत्तर काल के पिछले चार दशकों के दौरान ग्रामीण ऋण प्रणाली में बहुत परिवर्तन हुआ है। समय और परिस्थितियों की बदलती हुई आवश्यक आवश्यकताओं ने क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने के लिए बाध्य किया। प्रणाली में इस प्रगतिशील परिवर्तन का समय प्रभाव 1951, 1961, 1971 तथा 1981 के चार दशकों के निर्णायक चरणों में कृषकों के उधार लेने के कार्यक्रमों में शामिल अनेक एजेन्सियों की सापेक्ष स्थिति को दर्शाने वाले आंकड़ों से स्पष्ट है। संस्थागत एजेन्सियों का हिस्सा 1951 में 7.3% था जो बढ़कर 1961 में 18.7%, 1971 में 31.7% और 1981 में 63.7% हो गया। कृषि में समग्र वृद्धि दर, ग्रामीण अर्थव्यवस्था तथा ग्रामीण परिवारों की क्रय शक्ति में भी इसी प्रकार का प्रभाव परिलक्षित हुआ। इसी पृष्ठभूमि में हम यहां ग्रामीण ऋण प्रणाली की क्रान्तिकारी प्रक्रिया, इसकी प्रगति तथा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में योगदान प्रणाली की शक्ति तथा कमजोरियों को ध्यान में रखते हुए प्रणाली को फिर से व्यवस्थित करने तथा उसे प्रभावी और सक्षम बनाने के लिए कुछ उपायों की शुरुआत की। इसके अलावा भविष्य की चुनौतियों का सामना करने के लिए प्रणाली में और सुधार करने के वास्ते पिछले अनुभवों के आधार पर कुछ सुधार किए गए।

आवश्यकता

भारत में विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक विकास की प्रक्रिया पर विचार करते समय भूमि को राष्ट्रीय परिसम्पति के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए और राष्ट्र के सर्वोत्तम हित में इसका उपयोग किया जाना चाहिए, चाहे यह भूमि निजी क्षेत्र के अधिकार में ही क्यों न हो। जमीन के विकास तथा उपयोग की प्रक्रिया योजनाबद्ध आधार पर की जानी चाहिए जिसके अन्तर्गत हर क्षेत्र के सर्वाधिक उपयुक्त भूमि के सुधार तथा कृषि के तरीके अपनाए जाएं ताकि इस राष्ट्रीय परिसम्पत्ति का सर्वोत्तम उपयोग किया जा सके।

क्रान्तिकारी प्रक्रिया

इस समय देश के सामने सीमित भूमि से अधिक से अधिक उत्पादन करने का उद्देश्य है ताकि इस शताब्दी के अन्त तक की देश की खाद्य और कच्चे पदार्थों की आवश्यकताओं को न केवल पूरा किया जा सके बल्कि उससे आगे की आवश्यकताओं की भी पूर्ति की जा सके और यह सफलता तभी मिल सकती है जब किसानों को निवेश ऋण के ज़रिये जमीन में विकसित तरीके अपनाने के लिए सक्षम बनाया जाए तथा अल्पकालिक ऋणों के जरिए कृषि के वैज्ञानिक तरीकों को अपनाने के योग्य बनाया जाए। सहकारिता से संबद्ध मकलागन समिति ने 1915 में ही सरकार द्वारा कृषि के लिए पूंजी के प्रावधान की आवश्यकता को महत्त्व दिया और एक अखिल भारतीय सहकारी बैंक बनाने का तर्क प्रस्तुत किया ताकि कृषकों को ऋणों की समस्याओं से मुक्त रखा जा सके। इस प्रकार किसानों को सहायता देने के सरकार के संकल्पबद्ध प्रयासों के फलस्वरूप शताब्दी के समाप्त होने के आस-पास भारतीय कृषि क्षेत्र में अल्प -अवधि के सरकारी ऋण देने के संबंध में त्रिस्तरीय ढ़ाचा बन गया। प्रारम्भ में भूमि विकास बैंक कायम किए गए जिनका मुख्य उद्देश्य किसानों को दीर्घ अवधि के ऋण उपलब्ध कराना था जिससे वे कई पीढ़ियों से अपने ऊपर जमा भारी ऋण से मुक्त हो सकें। बाद के वर्षों में ये ही बैंक ग्रामीण विकास के लिए निवेश ऋण उपलब्ध कराने के वास्ते प्रमुख संस्थागत एजेन्सी का रूप धारण कर गये। भारत में पहला बैंक दिसम्बर 1929 में मद्रास में कायम किया गया जिसका उद्देश्य तत्कालीन मद्रास प्रान्त में प्राथमिक बैंकों के काम-काज में समन्वय करना और डिबेन्चर जारी करने के

काम का केन्द्रीयकरण करना था। 'लैंड मॉर्टगेज बैंकों (जमीन को गिरवी रखने वाले) की स्थापना से सहकारी ऋण ढांचे की दो शाखाएं विकसित हुईं। एक शाखा तीन स्तरों में विभाजित हुई जिसमें शीर्ष स्तर पर राज्य सहकारी बैंक थे। जिला स्तरों पर जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक और ग्राम स्तर पर पी.ए.सी. बैंक स्थापित किए गए। इनका उद्देश्य अल्पकालिक तथा मध्यम काल के ऋण उपलब्ध कराना था। किसानों को निवेश ऋण उपलब्ध कराने के लिए एक अन्य दीर्घकालिक ऋण शाखा का गठन किया गया जो ऋण प्रदाय प्रणाली का सबसे प्रमुख हिस्सा है। शताब्दी के अन्त तक ऋण संस्थाओं के अस्तित्व में आ जाने पर तथा इन संस्थाओं के विकास के प्रति सरकार की वचनबद्धता के कारण एक उपयुक्त केन्द्रीय एजेन्सी द्वारा समन्वयन, मार्गनिर्देशन तथा सहायता की कुछ आवश्यकता हुई। भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि की प्रमुखता और गरीबी तथा लगातार ऋण के चंगुल में फंसे किसानों तथा ऋण-राहत व कई अन्य उपायों के जरिए उनकी स्थिति में सुधार लाने के लिए केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारों द्वारा किये जा रहे प्रयासों की ओर भारतीय रिजर्व बैंक के संस्थापकों का ध्यान आकृष्ट हुआ। भारतीय रिजर्व बैंक ने सरकार को 1937 के अंत में अपनी सार्विधिक रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए सहकारी आन्दोलन को महत्व प्रदान करते हुए कहा कि कृषि वित्त प्रावधान के लिए यह सर्वाधिक उपयुक्त एजेन्सी है और यह महसूस किया कि हांलकि सरकारी आन्दोलन किसानों की ऋण आवश्यकताओं को पर्याप्त रूप से पूरा करने के लिए अभीष्ट स्तर तक नहीं पहुंच पाया है तथापि यदि इसका उपयुक्त पुनर्गठन किया जाये तथा फिर से सक्रिय बनाया जाए तो यह इस क्षेत्र में उचित भूमिका निभाने में सक्षम है। भारतीय रिजर्व बैंक ने इस कानून के जरिए एक विचित्र भूमिका यह स्वीकार की कि भारतीय रिजर्व बैंक ग्रामीण ऋण के क्षेत्र में केन्द्रीय बैंकिग प्राधिकरण (सेन्ट्रल बैंकिग अथॉरिटी के रूप में अपनी भूमिका निभाएगा और उसका यह कार्य विश्व के इतिहास में अद्वितीय है।

बैंकिंग समिति

भारत सरकार ने भारतीय रिजर्व बैंक के संकेत पर ग्रामीण बैंकिंग जांच समिति नियुक्त की। समिति की यह रिपोर्ट ग्रामीण सहकारिता ऋण ढांचे के विकास में उल्लेखनीय सिद्ध हुई। समिति ने सहकारी बुनियादी ढांचे को बिल्कुल संतोषजनक पाया। समिति ने यह भी पाया कि वाणिज्यिक बैंक तालुक या तहसील अथवा प्रमुख मण्डी कस्बों से बाहर नहीं गए हैं और उन्होंने कृषि तथा ग्रामीण ऋण में कोई खास दिलचस्पी नहीं दिखाई। ग्रामीण इलाकों में साहूकारों और देशी बैंकरों का अब भी दबदबा बना हुआ है हांलाकि उनकी गतिविधियां धीरे-धीरे कम होती जा रही हैं। समिति ने केन्द्रीकृत ऋण संस्था बनाने के विचार का समर्थन नहीं किया और यह महसूस किया कि भविष्य में वित्त का बुनियादी ढांचा निम्नलिखित प्रकार का हो —

1. भारतीय रिजर्व बैंक तथा सभी प्रांतों में उसकी शाखाएं हों।
2. इम्पीरियल बैंक तथा अन्य वाणिज्यिक बैंक जिनकी शाखाएं ताल्लुकों और बड़े गांवों में हों और जो कृषि तथा ग्रामीण ऋण और अन्य कार्यकलापों की आवश्यकताओं का ध्यान रखते हों।
3. प्रांतीय तथा केन्द्रीय सहकारी बैंक तथा उनकी शाखाएं अथवा सभी कस्बों और बड़े गांवों में स्थित संबद्ध बैंक हों।
4. दीर्घ-अवधि की ऋण आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सभी क्षेत्रों में 'लैंड मार्टगेज बैंकों' की शृंखला तथा
5. एकमुश्त ऋण उपलब्ध कराने के लिए मजबूत, बहुद्देश्यीय समितियां। भारतीय रिजर्व बैंक ने इनमें से कुछ प्रमुख रिफारिशों को 1950 में स्वीकार कर लिया।

तत्पश्चात भारतीय रिजर्व बैंक ने ग्रामीण ऋण प्रणाली के व्यापक सर्वेक्षण के लिए 'अखिल भारतीय ऋण सर्वेक्षण निर्देशन समिति' नियुक्त की। वास्तव में इस समिति की सिफारिशों ने भारत में व्यापक आधार वाले ग्रामीण बैंकिंग ढांचे के विकास के लिए ठोस आधार का निर्माण किया। भारत में सहकारी ऋण आंदोलन का विकास तीन दृष्टियों से अपर्याप्त रहा, पहला तो यह कि देश के काफी हिस्से में सहकारी ऋण आंदोलन नहीं चलाया गया। अधिकतर किसानों को इसकी सदस्यता नहीं मिल पाई और यदि सहकारी ऋण सोसाइटियों का उन्हें सदस्य बनाया भी गया तो उनके ऋण की आवश्यकताओं का अधिकांश भाग सहकारियों के अलावा अन्य स्रोतों से पूरा हो पाया। इसलिए सर्वेक्षण समिति की सिफारिशें बहुत क्रांतिकारी थीं। इन सिफारिशों में समेकित ग्रामीण ऋण योजना तथा इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया को भारतीय स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया के रूप में बदलने की विचारधारा शामिल थी। भारतीय स्टेट बैंक को ग्रामीण क्षेत्रों तथा ग्रामीण ऋण संचालनों में प्रमुख भूमिका निभाने का कार्य निर्धारित किया गया था।

सर्वेक्षण समिति ने शीर्षस्तर पर राज्य सहकारी बैंकों, जिला स्तर पर केन्द्रीय सहकारी बैंकों को वित्तीय तथा तकनीकी रूप से मजबूत करने और आधार स्तर पर प्राथमिक ऋण समितियों की स्थापना की भी सिफारिश की। आधार स्तर की प्राथमिक ऋण समितियों का काम न केवल कृषि के लिए ऋण उपलब्ध कराना बल्कि ग्रामीण उद्योगों के लिए ऋण उपलब्ध कराना था।

'ऑल इण्डिया रूरल क्रेडिट सर्वे कमेटी' (1954) ने अपनी रिपोर्ट में बताया कि प्राथमिक चरण में ऋण की वर्तमान प्रणाली इस प्रकार की है कि ढांचे के अपेक्षाकृत उच्च स्तरों पर जो धनराशि उपलब्ध है उसके उपयोग की अधिक गुंजाइश नहीं है। इसलिए सर्वे कमेटी ने फसल ऋण प्रणाली की सिफारिश की जिसमें - (1)वित्त व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य उत्पादन था (2) अल्पकालिक ऋण को फसल की अनुमानित उपज के आधार पर दिया जाना था केवल हक के आधार पर नहीं (3) फसल उत्पादन के अनुमानित व्यय को ध्यान में रखते हुए ऋण की राशि निर्धारित करना और (4) जब फसल की बिक्री हो तो उसके बाद वसूली करना। इस बात पर भी जोर दिया गया कि कृषि का उत्पादन करने वाले के गुजारे भत्ते की आवश्यकताओं के हिस्से को भी फसल ऋणों में शामिल किया जाना चाहिए। भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा तैयार की गई फसल ऋण पुस्तिका में सुझाव दिया गया है कि जमीन को गिरवी रखने के बजाय उस पर प्रभार देने की साधारण घोषणा के आधार पर ऋण दिए जाने चाहिए। छठे दशक के मध्य तथा उसके बाद की बदलती हुई परिस्थितियों और भारतीय कृषि में उत्पादन, फसलों की तैयारी और विपणन में नई प्रौद्योगिकी अपनाने के कारण सहकारी समितियों को अकेले ही नई चुनौतियों का सामना करने में कठिनाई महसूस होने लगी। भारतीय कृषि की ऋण आवश्यकताओं में तेजी से वृद्धि के कारण उनके लिए यह अधिकाधिक कठिन कार्य होता गया। इसके अलावा सहकारी समितियों की एक सबसे बड़ी कमजोरी यह रही कि किसानों पर ऋणों की बकाया राशि बढ़ती जा रही थी और कृषि तथा ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के साथ उनका प्रभावी सम्पर्क नहीं बना रह सका; इसलिए दिनों दिन यह महसूस किया जा रहा था कि सहकारी प्रयासों के लिए कोई पूरक व्यवस्था तैयार की जाए। 'ऑल इण्डिया रूरल क्रेडिट रिव्यू कमेटी' (1971) ने यह महसूस किया कि वाणिज्यिक बैंक अपनी तमाम खामियों के बावजूद ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण उपलब्ध कराने के दायित्व का वहन कर सकते हैं।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के बारे में नरसिम्हन् कार्य दल (1975) ने सहकारी समितियों के कार्यों के बारे में व्यापक अध्ययन किया। कार्यदल ने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि भारत जैसे विशाल आकार और क्षेत्रीय विविधता वाले देश में एक ही प्रकार की प्रणाली,चाहे वह वाणिज्यिक बैंकिंग हो अथवा सहकारी ऋण प्रणाली हो, सभी क्षेत्रों की सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकती। इसलिए कार्यदल ने अपने निष्कर्ष में कहा कि इन सब कार्यों के लिए एक ऐसी संस्था की आवश्यकता है जो ग्रामीण समस्याओं तथा भावनाओं से अवगत हो और साथ ही जमा राशियों को बढ़ाने, केन्द्रीय मुद्रा बाजारों में पहुंच तथा आधुनिक दृष्टिकोण से युक्त हो अर्थात वह संस्था सहकारिता और वाणिज्यिक बैंकों -दोनों के मिले-जुले स्वरूप की हो।

राष्ट्रीय कृषि आयोग ने कृषक सेवा समितियों की स्थापना की सिफारिश की जिसका उद्देश्य छोटे और सीमांत किसानों को हर प्रकार के ऋण उपलब्ध कराना और तकनीकी मार्ग-निर्देश तथा पूरी सेवा उपलब्ध कराना है। यह योजना 1973-74 से चल रही है। 30 जून 1985 को 2,517 कृषक सेवा समितियां थीं जिनमें से 2,062 केवल चार राज्यों -उतर प्रदेश (1049), असम (699), कर्नाटक (213) तथा बिहार (101) में थीं। इसी बीच श्री के.एस.बावा की अध्यक्षता में नियुक्त अध्ययन दल ने सिफारिश की कि कृषक सेवा समितियों की पद्धति पर जनजातीय क्षेत्रों में भी समितियां (LAMPS) कायम की जायें जो उन्हें हर प्रकार के ऋण उपलब्ध कराएं। 30 जून 1985 को LAMPS की संख्या 2,863 थी।

भारत में कृषि विकास की प्रक्रिया में संस्थागत ऋण प्रमुख भूमिका निभाता है, इसलिए तीसरी योजना में राष्ट्रीय स्तर की एक संस्था बनाने की तत्काल आदश्यकता महसूस की गई और जुलाई 1963 में कृषि पुनर्वित निगम की स्थापना की गई। बाद में 1975 में अधिनियम संशोधन करके इसका नाम कृषि पुनर्वित तथा विकास निगम रखा गया। इस संस्था ने 1963 से 11 जुलाई 1982 की अवधि में 2808 करोड रु का पुनर्वित उपलब्ध कराया। इस अवधि में भारतीय कृषि के विकास में इसकी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका रही लेकिन क्षेत्रीय असंतुलनों को कम करने तथा पर्वतीय, जनजातीय और पिछड़े क्षेत्रों के विकास के उद्देश्यों को पूरा करने में यह समर्थ नहीं हो सका।

अतः कृषि क्षेत्र की विभिन्न समस्याओं का अध्ययन करने के बाद राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) कायम करने का सुझाव दिया गया। 'नाबार्ड' की स्थापना 12 जुलाई 1982 को हुई। इसका उद्देश्य समेकित ग्रामीण विकास को प्रोत्साहन देने के लिए कृषि, लघु उद्योगों, ग्राम तथा हस्तशिल्पों और अन्य ग्रामीण आर्थिक गतिविधियों के लिए ऋण उपलब्ध कराना है। इसके अलावा यह बैंक ग्रामीण क्षेत्रों के विभिन्न कार्यकलापों में कार्यरत लोगों को प्रशिक्षण भी देता है। उनकी परियोजनाओं का मूल्यांकन, उनकी निगरानी और उन्हें पुनर्वित्त उपलब्ध कराने जैसे अनेक कार्यों को भी पूरा करता है।

संक्षेप में कृषि के लिए सहकारी समितियों द्वारा प्रत्यक्ष संस्थागत वित्त उपलब्ध कराने को छः प्रमुख भागों में बांटा जा सकता है -- (i) 1950-51 – स्वतंत्रता के पश्चात् योजना काल का प्रारम्भ; (ii) 1960-61 – सघन कृषि विकास कार्यक्रम का कार्यान्वयन तथा अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति की रिपोर्ट (1954) जारी करने के बाद की स्थिति; (iii) 1970-71 – प्रमुख वाणिज्यिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण का प्रथम वर्ष; (iv) 1975-76 – क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना का प्रथम वर्ष; (v) 1980-81 – छठी पंचवर्षीय योजना का प्रथम वर्ष तथा (vi) 1984-85 – छठी योजना की समाप्ति का वर्ष।

वर्ष 1950-51 में केवल 22 करोड़ 90 लाख रु. के अल्पकालिक ऋण जारी किए गए थे जबकि 1960-61 में 182.80 करोड़ रु., 1970-71 में 519.30 करोड़ रु., 1975-76 में 881.40 करोड़ रु., 1980-81 में 1355.00 करोड़ रु. और 1984-85 में 2482.00 करोड़ रु. के अल्पकालिक ऋण जारी किए गए।

1975-76 में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना करने का विचार आया और सहकारी संगठनों ने जनजातीय उपयोजना का समर्थन किया और जुलाई, 1975 में घोषित 20 सूत्री आर्थिक कार्यक्रम के अन्तर्गत रेखांकित प्रमुख क्षेत्रों की ओर ध्यान दिया। 1980-81 के दौरान सहकारी समितियों को कृषि के विकास का प्रमुख दायित्व सौंपा गया। इस बीच पी.ए.सी. के पुनर्गठन का काम भी प्रगति पर था। पुनर्गठन प्रक्रिया के कारण 1980-81 में पी.ए.सी. की संख्या 90 हजार थी लेकिन जून 1985 के अन्त तक इनकी संख्या बढ़कर 91749 तक पहुंच गई।

1975-76, 1980-81 तथा 1985-86 के दौरान ऋणों के वितरण में शानदार प्रगति देखने को मिली। इसका प्रमुख कारण यह था कि वाणिज्यिक बैंकों ने ग्रामीण और अर्द्ध-शहरी क्षेत्रों में अपनी शाखाओं का बड़ी तेजी से विस्तार किया, भारी संख्या में क्षेत्रीय अधिकारियों को प्रशिक्षित किया गया और विभिन्न विशेषज्ञ समितियों/कार्य दलों-राय कमेटी तथा बलदेव सिंह कार्य दल (वर्किंग ग्रुप) आदि की सिफारिशों पर ऋण नीति को सरल बनाया गया।

नाबार्ड के मार्ग-निर्देशों के अनुसार कई ऋण योजनाएं तैयार की गईं और सरकार द्वारा शुरू किए गए कई कार्यक्रमों – एस. एफ. डी. ए., एम. एफ. ए. एल. डी. ए., एफ. एफ. डी. ए., डी. पी. ए. पी., सी. ए. डी., टी. एस. पी., बीस सूत्री कार्यक्रम, आई. आर. डी. पी. और ऑपरेशन फ्लड आदि के कार्यान्वयन में लोगों को सक्रिय रूप से शामिल किया गया।

अनुवाद : राम बिहारी विश्वकर्मा
ए-103, सेक्टर 4,
डी आई जेड एरिया,
नई दिल्ली-1

ग्रामीण विकास एवं बैंक-अपेक्षाएँ उपलब्धियाँ एवं सम्भावनाएँ

डॉ. नरेश चन्द्र त्रिपाठी

कृषि एवं ग्राम प्रधान अर्थव्यवस्था होने के कारण भारत में विकास की कोई रणनीति सफल नहीं हो सकती जब तक कि उससे गाँवों का विकास न हो। ग्रामीण विकास में बैंकिंग प्रणाली का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि विकास की प्रक्रिया में वित्त प्रबन्धन, बचतों को प्रोत्साहन एवं उनका संकलन, आर्थिक संसाधनों को गतिशील करने का एकमात्र माध्यम बैंकिंग प्रणाली ही है। भारत में समग्र आर्थिक विकास चूँकि ग्रामीण विकास पर निर्भर है, इसलिए बैंकिंग प्रणाली को विकास से जोड़ने के लिए ग्रामीण क्षेत्र से सम्बद्ध करना होगा। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए सरकार ने ग्रामीण क्षेत्र में बैंकिंग के विस्तार पर बल दिया है।

स्वतंत्रता से पूर्व ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाएं नहीं के बराबर थीं। रिजर्व बैंक की स्थापना के साथ ही 1935 में कृषि साख विभाग की स्थापना हुई थी। स्वतंत्रता के बाद 1954 में गठित अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति ने ग्रामीण साख की तत्कालीन दशा पर अत्यधिक चिन्ता व्यक्त की थी। उस समय साख का मुख्य स्रोत निजी व्यक्ति, महाजन तथा साहूकार ही थे। सर्वेक्षण समिति का निष्कर्ष था कि ग्राम्य वित्त की उपलब्धता आवश्वयकता से बहुत कम है। इसमें सहकारी साख की आवश्यता पर बल दिया था। 1954 में प्रकाशित समिति की रिपोर्ट में इम्पीरियल बैंक की ग्रामीण वित्त के सम्बन्ध में उदासीनता के लिए आलोचना की गयी थी। समिति ने बैंक की पूँजी बढ़ाने और स्टेट बैंक आफ इण्डिया की स्थापना का सुझाव दिया। जिसके क्रियान्वयन में स्टेट बैंक आफ इंडिया की स्थापना हुई। इसकी स्थापना का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण तथा पिछड़े क्षेत्रों में बैंकिंग तथा साख का प्रचार करना था। स्टेट बैंक आफ इण्डिया अकेला बैंक होने के कारण ग्रामीण क्षेत्र की भारी साख आवश्यकताओं को पूरा न कर सका। ग्राम्य क्षेत्र में स्टेट बैंक के प्रयासों की अपर्याप्तता के बाद व्यावसायिक बैंकों से अपेक्षा की गयी। इसी आशय से वाणिज्यिक बैंकों पर सामायिक नियंत्रण की नीति लागू की गयी। किन्तु सामाजिक नियंत्रण के बाद भी व्यावसायिक बैंकों की कार्यशैली में परिवर्तन नहीं हुआ। ये बैंक अब भी ग्रामीण क्षेत्र की उपेक्षा कर रहे थे। दूसरी तरफ खेती में नवीन रणनीति (हरित क्रान्ति) जन्म ले रही थी। इसलिए उन्नत बीजों, उर्वरकों, कीटनाशकों, अल्पसिंचाई परियोजनाओं आदि के लिए कृषि साख की अधिक एवं तत्पर व्यवस्था की आवश्यकता अनुभव हुई। इन परिस्थितियों में बैंकों का राष्ट्रीयकरण अनिवार्य हो गया। इसीलिए 19 जुलाई 1969 को भारत सरकार ने अध्यादेश जारी करके 14 प्रमुख वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया जिसे बाद में अधिनियमित किया गया। राष्ट्रीयकरण के अनुकूल प्रभावों को देखते हुए 15 अप्रैल 1980 को एक अध्यादेश जारी करके निजी क्षेत्र के 6 और बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। इस राष्ट्रीयकरण के फलस्वरूप 91 प्रतिशत बैंकिंग पूंजी सार्वजनिक क्षेत्र में आ गई।

राष्ट्रीयकृत बैंक और ग्रामीण क्षेत्र

राष्ट्रीयकरण के समय ग्रामीण क्षेत्रों में इन बैंकों की 1858 शाखाएँ थीं, जो जून 1986 में बढ़कर 29750 हो गयीं। दूसरे शब्दों में कुल 56% शाखाएँ ग्रामीण बैंकों में कार्यरत हैं। लगभग 16 किलोमीटर के घेरे में एक बैंक की सुविधा उपलब्ध है। नवीन शाखा नीति के अन्तर्गत प्रत्येक 17,000 की जनसंख्या को ग्रामीण एवं अर्द्धनगरीय क्षेत्रों में एक बैंक की सुविधा उपलब्ध कराने का प्रयास है। बजट 1988-89 में वित्त मंत्री ने एक बैंक को 15-20 गांवों का सेवा क्षेत्र सौंपने का प्रस्ताव किया है, जहां हर प्रकार की साख की आपूर्ति इस बैंक द्वारा की जायेगी।

ग्रामीण क्षेत्र में तेजी से शाखा विस्तार का ही परिणाम है कि कृषि तथा अन्य प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों में ऋण का अनुपात 1969 में 15% से बढ़कर जून 1985 में लगभग 42% हो गया। 1969 में कृषि क्षेत्र को बैंकों से 142 करोड़ रु. ऋण प्राप्त हुआ था, जिसकी मात्रा जून 1985 में बढ़कर 7850 करोड़ हो गयी। इस प्रकार कृषि क्षेत्र को कुल ऋण

जहां 1969 में 5.5% भाग प्राप्त था 1985 में 17.7% भाग प्राप्त हुआ। 1969 में कुल 1.6 लाख कृषकों के खाते इन बैंकों में थे तथा बकाया राशि 165 करोड़ रु. थी, जो 1985 में बढ़कर 73.50 करोड़ हो गयी और खातों की संख्या 145 लाख हो गयी। राष्ट्रीयकरण के बाद कृषकों को बैंकों से अल्पकालीन ऋण, मध्यकालीन ऋण तथा दीर्घकालीन ऋण उर्वरक, बीज, अल्पसिचाई, पम्पसेट्स, ट्रैक्टर तथा अन्य मशीनरी क्रय करने के लिए दिये गये। कृषकों को दिये गये इन ऋणों की एक और विशेषता यह प्रकट हुई है कि चतुर्थ योजना से अधिकांश ऋण छोटे और सीमान्त कृषकों को रियायती ब्याज दर पर दिये गये। 1972 में 162 जिलों में विभेदक ब्याज दरें लागू की गयीं थीं। जिसे बाद में पूरे देश में लागू कर दिया गया। इन बैंकों द्वारा विभेदक ब्याज दर नीति के अन्तर्गत 4860.8 मिलियन रु. दिया गया जो औसतन प्रति खाता 1068 रु. है। यह ऋण बिना किसी सम्पत्ति को आधार बनाये दिया जाता है, जिसकी भारतीय ग्रामीण सम्पतिहीन वर्ग को जरूरत है। इस प्रकार भारतीय गांवों के मुख्य व्यवसाय कृषि को वित्त उपलब्ध करा कर इन बैंकों ने कृषि और ग्रामीण क्षेत्र में सम्पन्नता लाने में योगदान किया है।

ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग के प्रसार का विकास पर एक प्रभाव यह भी पड़ा है कि इससे गांवों में बचतों को प्रोत्साहन मिला है। ग्रामीण बचतों को प्रोत्साहन देने और उसके संकलन से पूरी अर्थव्यवस्था पर यह प्रभाव पड़ा है कि वह धन जो अब तक निष्क्रिय रूप से जमीन के नीचे दबा रहता था, देश के विकास में सहयोग कर रहा है। राष्ट्रीयकरण के समय अनुसूचित बैंकों के पास ग्रामीण क्षेत्रों में केवल 145 करोड़ रु. जमा था तथा अर्द्धनगरीय क्षेत्रों में 1024 करोड़ रु., इन क्षेत्रों में 1977 में जमा राशि क्रमशः 249 करोड़ और 4668 करोड़ रु. हो गयी।

ग्रामीण क्षेत्र में बैंकिंग के प्रसार से ग्रामीण जनता में जागरूकता बढ़ी है। उनमें बैंकिंग आदतों (रुपया जमा करना, निकालना, चेक एवं अन्य साख पत्रों के प्रयोग) का विकास हो रहा है। बैंकों के माध्यम से सरकारी योजनाओं की जानकारी ग्रामीणों को होती है। बैंकों द्वारा निर्धनता उन्मूलन और ग्रामीण विकास की अन्य योजनाओं में भी सहयोग किया जा रहा है।

ग्रामीण बैंक तथा सहकारी बैंक

राष्ट्रीयकृत बैंकों के अतिरिक्त ग्रामीण बैंक छोटे तथा सीमान्त कृषकों, शिल्पकारों, कृषि मजदूरों आदि को उधार तथा अन्य सुविधाएं उपलब्ध करा रहे हैं। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना 26 सितम्बर 1975 को एक अध्यादेश के द्वारा की गयी थी। जून 1985 तक 23 राज्यों में 183 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक कार्यरत थे, जिनकी 12729 शाखाओं द्वारा 967 करोड़ रु. अल्पकालीन ऋण उपलब्ध कराया गया। ग्रामीण तथा व्यावसायिक बैंकों के अतिरिक्त पूरे देश में विकास खण्ड स्तर पर सहकारी बैंक भी ग्रामीण विकास में योगदान कर रहे हैं।

ग्रामीण क्षेत्र में बैंकिंग क्रियाओं को समन्वित करने और विकास में अधिक भूमिका सुनिश्चित करने के लिए 1982 में नाबार्ड-राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक स्थापित किया गया। इस बैंक के 5 वर्ष के कार्य निष्पादन से आशा बंधती है कि नाबार्ड अपने उद्देश्यों में सफल होगा, जिससे कृषि तथा ग्रामीण विकास का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकेगा।

ग्रामीण क्षेत्र में बैंकिंग विस्तार कितना सफल

उपर्युक्त पूरे विवेचन से यह स्पष्ट है कि 1970 के बाद ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग का तेजी से विस्तार हुआ है। ग्रामीण क्षेत्रों में शाखाओं का तेजी से प्रसार हुआ, ग्रामीण खातों की संख्या में वृद्धि हुई है, ग्रामीणों में बैंकिंग आदतों का विकास हुआ है, बचतें बढ़ी हैं और संसाधन गतिशील हुये हैं। लेकिन आज भी वाणिज्यिक बैंक ग्रामीण साख की आपूर्ति में अपर्याप्त भूमिका निभा रहे हैं। कुछ वर्ष पहले एक अध्ययन रिपोर्ट का निष्कर्ष था – "व्यापारिक बैंकों का ऋण देने के सम्बन्ध में शहरों की ओर ज्यादा झुकाव रहता है। गांवों में जमा व ऋण अनुपात से पता चलता है कि गांवों में जमा किया गया पैसा भी शहरी क्षेत्रों में इस्तेमाल होता है। हालांकि तथाकथित प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों, में कृषि भी शामिल है। किन्तु व्यापारिक बैंकों द्वारा दिये गये उधार में कृषि क्षेत्र का भाग 15 या 16 प्रतिशत से अधिक कभी नहीं रहा। सरकार की पर्याप्त सबसिडी वाले समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम लागू हो जाने के बाद भी व्यापारिक बैंक किसी न किसी कारण से उतनी राशि ऋण के रूप में नहीं दे रहे हैं जितनी देनी चाहिए।"

प्रभावी भूमिका की आशाएँ

ग्रामीण विकास में बैंको की भूमिका कुछ वर्ष पहले सन्तोषजनक नहीं थी, किन्तु 1980 के बाद बैंकिंग की अनेक

शेष पृष्ठ 23 पर

बांसवाड़ा जिले में बैंकिंग विकास

अशोक कुमार नागर,
डा. इन्द्रवर्धन त्रिवेदी

बांसवाड़ा जिले का आर्थिक पिछड़ेपन का एक प्रमुख कारण वित्तीय संस्थाओं का अभाव होना रहा है। बांसवाड़ा में सबसे पहला बैंक "बांसवाड़ा व्यापारिक एवं औद्योगिक बैंक" स्थापित किया गया था जो 1921 तक बैंक ट्रेजरी के विस्तार के रूप में कार्य करता रहा। 1945 में बैंक का नाम बदलकर "बांसवाड़ा बैंक लिमिटेड" कर दिया गया। 1953 में बैंक को "बांसवाड़ा केन्द्रीय सहकारी बैंक" में परिवर्तित कर दिया गया।

आधुनिक बैंकिंग संस्थाओं के रूप में सर्वप्रथम 28 मार्च 1949 को राजस्थान बैंक की शाखा यहां स्थापित हुयी थी। इसके पश्चात 16 जुलाई 1960 को "स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एण्ड जयपुर" शाखा की स्थापना हुयी। दिसम्बर 1969 के अन्त तक इन दोनों व्यावसायिक बैंकों की सामूहिक जमाएं व अग्रिम क्रमशः 44.01 लाख व 4.32 लाख रुपये थीं।

1968 में प्रति व्यक्ति जमा बांसवाड़ा जिले में 6.40 रु. थी जबकि राज्य में प्रति व्यक्ति जमा 32.5 रु. और भारत में यह जमा 84.9 रु. थी। 1969 में बैंकों द्वारा अग्रिम प्रति व्यक्ति औसत 55 पैसा था जबकि राज्य का औसत 14.9 रुपये था और भारत का 60 रुपये था। 1968 में जिले में प्रत्येक शाखा की जमाएं व अग्रिम क्रमशः 7.7 लाख रु. व 67000 रुपये थे जबकि राजस्थान में व्यावसायिक बैंकों की शाखाओं का औसत इसी अवधि में 24.24 लाख व 11.13 लाख रुपये थी। इस प्रकार बांसवाड़ा जिले में बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पूर्व तक बैंकिंग विकास की प्रवृति अधिक धीमी थी।

राष्ट्रीयकरण के पश्चात बांसवाड़ा जिले में बैंकिंग विकास

19 जुलाई 1969 में देश में कार्यरत 14 बड़े व्यापारिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया था। राष्ट्रीयकरण का प्रमुख लक्ष्य आर्थिक एवं सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति करना था। राष्ट्रीयकरण के बाद 29 अप्रैल 1970 को पंजाब नेशनल बैंक ने जिले में अपनी शाखा स्थापित की। इस बैंक ने जिले के विकास में अहम् भूमिका निभाई है। 8 अप्रैल 1971 में बांसवाड़ा जिले में "बैंक ऑफ बड़ौदा" की स्थापना की गयी यह जिले का लीड बैंक है, इस बैंक की व्यापारिक बैंकों से सहयोग स्थापित करने, सरकारी एजेन्सियों से तालमेल बैठाने, जिले में बैंकिंग सुविधाएं प्रदान करने के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। दिसम्बर 1986 में जिले में बैंकों की शाखाएं 80 हो गयी हैं। जिसमें 54 वाणिज्यिक बैंक एवं 14 डूंगरपुर – बांसवाड़ा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, 8 केन्द्रीय सहकारी बैंक और 4 प्राथमिक भूमि विकास बैंक हैं। 1969 में जिले में केवल मात्र 6 बैंक शाखाएं कार्य कर रही थीं। इस प्रकार राष्ट्रीयकरण के पश्चात जिले में बैंकिंग शाखाओं का विस्तार तेजी से हुआ है।

पंचायत समितिवार बैंक शाखाएं

सम्पूर्ण जिले को 8 खण्डों में विभाजित किया गया है। प्रारम्भ में केवल उन्हीं स्थानों पर शाखाओं की स्थापना की गयी थी जो आर्थिक दृष्टि से अधिक विकसित एवं सरक्षित क्षेत्र थे। परन्तु अब जिले में धीरे-धीरे आधारमूलक सुविधाओं के विकास के साथ-साथ बैंकिंग सुविधाओं का विस्तार भी समान रूप से हो रहा है। निम्नलिखित सारणी से स्थिति की जानकारी की जा सकती है:–

सारणी नं. 1

जिले में पंचायत समितिवार वाणिज्यिक बैंकों की शाखाएं (31 दिसम्बर 1986 तक की रिपोर्ट)

पंचायत समिति	स्टेट बैंक समूह	राष्ट्रीयकृत बैंक	अन्य बैंक (निजी क्षेत्र का बैंक आफ राज.)	कुल
1-पीपलखुट	—	2	1	3
2-घाटोल	5	3	—	8
3-गढ़ी	1	12	4	17
4-तलवाड़ा	3	11	3	17
5-बागीदोरा	2	3	4	9
6-सज्जनगढ़	—	2	2	4
7-कुशलगढ़	2	4	—	6
8-आनंदपुरी	1	3	—	4
कुल	14	40	14	68

स्रोत – मार्गदर्शी लीड बैंक कार्यालय बैंक ऑफ़ बड़ोदा, बांसवाड़ा

बैंकों के राष्ट्रीयकरण के परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में शाखाओं का पर्याप्त विस्तार हो रहा है। दिसम्बर 1979 में कुल शाखाओं में ग्रामीण शाखाओं का 80 प्रतिशत था, दिसम्बर 1986 में कुल शाखाओं में ग्रामीण एवं अर्द्ध शहरी क्षेत्रों का प्रतिशत क्रमशः 88.24 एवं 11.76 था। उल्लेखनीय है कि अधिकांश शाखाएं बैंक रहित केन्द्रों पर स्थापित की गयी हैं। अतः बांसवाड़ा जिले की ग्रामीण जनसंख्या जो कि 88 प्रतिशत के लगभग है, बैंकिंग सेवाओं का लाभ प्राप्त करने लगी हैं।

जमा संग्रहण

बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पश्चात् शाखा विस्तार के कारण एवं बैंकों द्वारा दी जाने वाली प्रेरणाओं से, बैंकों की जमाओं में विशेष वृद्धि हुयी है। राष्ट्रीय स्तर की तरह बांसवाड़ा में भी बैंकों के द्वारा किये गए अनवरत प्रयासों के परिणामस्वरूप बैंक जमाओं में पर्याप्त वृद्धि हुई है। जिले में वाणिज्यिक बैंकों की कुल जमा राशि जून 1969 तक 50.39 लाख रुपये थी जो बढ़कर मार्च 1987 को 4906.50 लाख रुपये हो गई है।

राष्ट्रीयकरण के बाद जिले में बैंक शाखाओं के विस्तार से बैंक जमाओं में अधिक वृद्धि हुई है। जिले में प्रति शाखा बैंक जमा राशि 1969 में 8.40 लाख रुपये से बढ़कर मार्च 1987 में 72.15 लाख रुपये हो गई है। बैंक जमाओं में सर्वाधिक वृद्धि वर्ष 1985 में रही। पिछले वर्ष की तुलना में यह वृद्धि 876.76 लाख रुपये थी।

बैंक समूहवार जमाओं का संग्रहण निम्नलिखित तालिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है:

सारणी नं. 2

जिले में बैंक समूहवार जमाओं का संग्रहण
(राशि लाख रुपये में)

अवधि	स्टेट बैंक समूह	राष्ट्रीयकृत बैंक	निजी क्षेत्र का बैंक	कुल
दिसम्बर 1984	1197.74	1128.82	514.99	2841.55
	(42.15)	(39.78)	(18.07)	(100.00)
दिसम्बर 1986	1839.28	1755.78	769.94	4365.00
	(42.14)	(40.22)	(17.64)	(100.00)

टिप्पणी – कोष्ठक में दिये गये आंकड़े कुल का प्रतिशत है।
स्रोत – लीड बैंक कार्यालय – बैंक ऑफ बड़ोदा, बांसवाड़ा

साख का विस्तार

जिले में बैंकिंग सुविधाओं के विस्तार के साथ-साथ बैंकों ने रिजर्व बैंक के निर्देशानुसार साख विस्तार के लिए भी विशेष प्रयास किए हैं। जिले में जून 1969 में वाणिज्यिक बैंकों द्वारा उपलब्ध कराई गई साख 5.04 लाख रुपये थी जो दिसम्बर 1983 में 1321.70 लाख रुपये तथा मार्च 1987 के अन्त में 2641.02 लाख रुपये हो गयी।

राष्ट्रीयकरण के बाद देश के अन्य क्षेत्रों की तरह बांसवाड़ा जिले में वाणिज्यिक बैंकों के कुल अग्रिमों में अनवरत रूप से वृद्धि हुई है। शाखाओं के प्रति बैंक शाखा अग्रिम जून 1969 में 84000 रुपये से बढ़कर मार्च 1987 में 38.83 लाख रुपये हो गये हैं।

प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों को अग्रिम

वाणिज्यिक बैंकों द्वारा जिले के प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों को प्रदान किये गये अग्रिम जून 1969 में 1.20 लाख रुपये थे, जो दिसम्बर 1986 को 1446.50 लाख रुपये हो गये। 1969 में जहां कुल ऋणों का 24 प्रतिशत भाग प्राथमिक क्षेत्रों को

द्वारा उपलब्ध किया जाता था, वह अब बढ़कर 55 शत हो गया है। वाणिज्यिक बैंकों द्वारा प्राथमिकता प्राप्त को अग्रिमों का विवरण निम्नलिखित तालिका से जाना सकता है।

सारणी नं. 3

जिले में वाणिज्यिक बैंकों द्वारा प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को अग्रिम
(राशि लाख रु. में)

	1980			1986		
	कुल अग्रिम	प्रा.प्राप्त क्षेत्र को अग्रिम	कुल का %	कुल अग्रिम	प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को अग्रिम	कुल का प्रतिशत
प्त						
	785.00	400.35	51.00	2630.00	1446.50	55
ग्रिम						
ष क्षेत्र		63.68	15.91		147.78	10.21
ु क्षेत्र		52.53	13.12		26.32	1.83
ा क्षेत्र		54.88	13.71		146.24	10.11

: लीड़ बैंक कार्यालय बैंक ऑफ बड़ोदा बांसवाड़ा

: प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र के अन्तर्गत अन्य आंकड़े लब्ध नहीं हैं।

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि जिले में कुल अग्रिमों में श्य ही लगातार वृद्धि होती जा रही है परन्तु जहां तक मिकता प्राप्त क्षेत्र के अग्रिम का प्रश्न है इनमें उतार व होते रहे हैं। हालांकि जिले में प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र के र्ष में वाणिज्यिक बैंकों ने लक्ष्य से अधिक सफलता प्राप्त है परन्तु प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को समान रूप से ऋणों का रण नहीं हो पाया है। उल्लेखनीय है कि 1980 से 1986 अवधि के मध्य कुल प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र के अग्रिमों में उद्योगों का प्रतिशत कम होता जा रहा है जो कि जिले के ास के लिए प्रतिकूल स्थिति कही जा सकती है।

सारणी नं. 4

बांसवाड़ा जिले की राजस्थान से तुलनात्मक स्थिति का विवरण दि. 1986 (राशि लाख रु.)

बैंकिंग शाखाएं	प्रति बैंक कार्यालय (जनसंख्या हजारों में)		जमाएं	अग्रिम	प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को अग्रिम	कुल अग्रिमों का प्रति.	साख जमा अनुपात
राजस्थान							
राज्य	2683	13	274251	178151	104522	58.67	73.20
बांसवाड़ा							
जिला	68	13	6365	2630	1446	55.00	79.21

स्रोत : लघु शोध प्रबंध, ए.के. नागर वाणिज्य महाविद्यालय उदयपुर

दिसम्बर 1986 को प्रति बैंक कार्यालय अग्रिम जिले में केवल 36.67 लाख थी जबकि राज्य स्तर पर यह अग्रिम 66.39 लाख रुपये थी। उल्लेखनीय है कि जिले में प्रति बैंक कार्यालय अग्रिम भी राज्य स्तर से कम है लेकिन साख जमा अनुपात जिले में राज्य स्तर से अधिक था। इसका प्रमुख कारण जिले में बैंकों द्वारा कम मात्रा में जमा संग्रहण करना था।

कमियां

उपरोक्त अध्ययन के तत्पश्चात यह कहा जा सकता है कि यद्यपि बांसवाड़ा जैसे पिछड़े हुए जिले में बैंकों को अपनी गतिविधियों के विस्तार में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा है परन्तु फिर भी यह सराहनीय है कि बैंकों ने निर्धारित लक्ष्यों से भी आगे बढ़ने का प्रयास किया है और इस प्रकार ग्रामीण विकास में योगदान प्रदान किया है। इसे हम राष्ट्रीयकृत बैंकों की ही देन कह सकते है। इन बैंकों को निम्नलिखित समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है—

जिले में पिछले वर्षों से वर्षा के अभाव में सूखे की स्थिति बनी हुई है जिसके कारण ऋण वसूली में बैंकों को कठिनाईयों का सामना करना पड़ रहा है। ऐसी स्थिति में ऋणों के वितरण में शिथिलता उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। जिले में औद्योगिक विकास अपेक्षाओं के अनुरूप नहीं हो सकता है। इसका विशेष कारण यह है कि औद्योगिक विकास के लिए अन्य आधारभूत सुविधाओं की दृष्टि से यह जिला अधिक पिछड़ा हुआ है। इन सुविधाओं के अभाव के कारण लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास के लिए भी बैंकों का योगदान कम ही रहा है। ग्रामीण एवं कुटीर उद्योगों में अपेक्षित उपलब्धि न होने का एक कारण यह भी रहा है कि कुछ बैंकों ने ग्रामीण एवं कुटीर उद्योग को सेवा क्षेत्र में लघु व्यवसाय शीर्षक के

अन्तर्गत वर्गीकृत किया है। इस प्रकार के वर्गीकरण को ठीक नहीं माना जा सकता है।

जिले में ऋणों की स्वीकृति एवं वितरण में देरी भी एक समस्या बनी हुई है। इसका कारण यह रहा है कि बैंकों में प्रशिक्षित कर्मचारियों का अभाव है, उनके पास वाहन का भी अभाव है। अतः वे अपने कार्य क्षेत्र को बहुत सीमित रखते हैं, दूर के गांवों में वे नहीं पहुंच पाते हैं। अतः ऐसे ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी बैंकिंग सुविधाएं उपलब्ध नहीं हो पा रही हैं। गांवों के गोद लेने की योजना भी केवल कस्बे के आस पास के गांवों तक ही सीमित है।

जिले में ग्रामीण शिक्षा के अभाव में उपलब्ध बैंकिंग सेवाओं की पूर्ण जानकारी नहीं हो पाती है और न इसके लिए बैंकों के द्वारा कोई प्रयत्न किये जाते हैं।

सुझाव

जिले में कार्यरत बैंकों ने जहां एक ओर अग्रिमों में उल्लेखनीय वृद्धि की है वहां ऋण ओर गुणवता की बहु आयामी करने की विशेष आवश्यकता है। वाणिज्यिक बैंकों को चाहिये कि वे उधार देने की नीति और कार्यविधि को सरल बनाये, ऋण के लिये दिए गये आवेदनों की उपयुक्त जांच प्रणाली लागू करें और अग्रिम प्रदान करने के बाद उन पर प्रभावी निगरानी की व्यवस्था को और अधिक मजबूत बनायें।

जैसा कि हम जानते हैं कि कृषि ऋण की वसूली अभी भी काफी असन्तोषजनक है। बैंकों को चाहिये कि वे ऋणों में अधिक सतर्कता अपनाये। ऋण वसूली में राज्य सरकार को सक्रिय और प्रभावी सहयोग प्रदान करना चाहिये। राज्य सरकार अपनी राजस्व वसूली की व्यवस्था के साथ-साथ बैंकों के द्वारा उधार दिये गये ऋणों की वसूली में सहयोग दे सकती है।

बांसवाड़ा जिला मूल रूप से आदिवासी तथा पिछड़ा हुआ क्षेत्र है फिर भी यह औद्योगिक रूप से पिछड़ा हुआ जिला अधिसूचित (घोषित) नही हैं। इसके लिए प्रयास किए जाने चाहिये कि इसे औद्योगिक रूप से पिछड़ा हुआ जिला घोषित किया जाए एवं वे सभी आधारभूत सुविधाएं उपलब्ध की जाए जो ऐसे घोषित जिलों को प्रदान की जाती हैं। त्रिपुरा सुन्दरी तथा तलवाड़ा के आस-पास के गांवों के संगमरमर की कटाई तथा छिलाई की अच्छी सम्भावनाएं हैं। अतः इन गांवों में नयी ईकाइयां स्थापित की जानी चाहिये। विद्युत चालित करघों की भी अच्छी सम्भावना है। इनके विकास के लिए बैंकों को सहयोग देना चाहिये।

निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि बांसवाड़ा जिले में बैंकिंग शाखाओं के विस्तार से भी अधिक आवश्यकता इस बात की है कि बैंकों की कार्य कुशलता एवं प्रभावोत्पादकता पर विशेष ध्यान दिया जाये। वाणिज्यिक बैंकों को विशेषतः ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी उन्मूलन के विभिन्न कार्यक्रमों के सम्बन्ध में और अधिक रुचि लेना चाहिये एवं वृद्धि में सहयोग देना चाहिये तभी बैंक ओर सफलता की ओर अग्रसर हो सकते हैं।

सहायक प्रोफेसर
बैंकिंग एवं व्यावसायिक अर्थशास्त्र विभाग
वाणिज्य महाविद्यालय, उदयपुर

पृष्ठ 19 का शेष

प्रवृत्तियां प्रभावी भूमिका की आशा जागृत करती हैं। ग्रामीण बैंकों के सम्बन्ध में रिजर्व बैंक द्वारा 1981 में सम्पादित एक अध्ययन का निष्कर्ष था कि इन बैंकों ने रिजर्व बैंक और भारत सरकार द्वारा निर्धारित उधार नीति एवं कार्य विधि सम्बन्धी हिदायतों का अनुसरण किया है। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों ने लक्षित समूहों को उधार देकर इस वर्ग में यह भावना जागृत की है कि ये छोटे व्यक्तियों के बैंक हैं। दूसरी ओर नाबार्ड ने सहकारी साख ढाँचे को मजबूत कर तथा अन्य प्रयासों से ग्रामीण विकास के क्षेत्र में उत्साह से कार्य प्रारम्भ किया है। व्यापारिक बैंकों को ग्रामीण विकास में सार्थक भूमिका निभाने के लिए नये दिशा निर्देश जारी किये जा रहे हैं, जिनका संकेत 1988-89 के बजट में किया गया है। ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाओं के विस्तार की सरकार की वचनबद्धता, नाबार्ड का उत्साहजनक कार्य निष्पादन एवं ग्रामीण बैंकों द्वारा अपेक्षाओं को पूरा करने का प्रयास यह संकेत देता है कि भविष्य में बैंक ग्रामीण विकास का सार्थक अभिकरण सिद्ध होंगे।

प्राध्यापक अर्थशास्त्र
रामनगर डिग्री कालेज,
रामनगर, बाराबंकी (उ.प्र.)

सार्वजनिक कोष कार्यक्रम नगालैंड के ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी उन्मूलन अभियान

अ०मा० गोखले
संयुक्त सचिव, ग्रामीण विकास विभाग

प्रस्तुत रिपोर्ट ग्रामीण विकास विभाग में इस समय संयुक्त सचिव श्री अ० मा० गोखले ने 1982 में उस समय तैयार की थी जब वे नगालैंड सरकार में ग्रामीण विकास सचिव थे।

रिपोर्ट में 1977 से 1980 तक नगालैंड के सभी गांवों में "ग्राम विकास बोर्ड" गठित करने की प्रक्रिया व 1982 के अंत तक सबसे निचले स्तर की इन संस्थाओं के कामकाज की चर्चा की गयी है। यह चर्चा अनेक अधिकारियों के क्षेत्र में अनुभवों पर आधारित है और इस विश्वास के साथ यहाँ प्रस्तुत की जा रही है कि क्षेत्र में विषय विशेषज्ञता के लिये कार्यरत अधिकारियों के लिये यह उपयोगी साबित होगी।

ग्राम विकास बोर्डों के 1988 तक के कामकाज का संक्षिप्त विवरण रिपोर्ट के साथ जोड़ा गया है जो इसकी अंतिम किस्त के साथ प्रकाशित किया जायेगा।

ईश्वर निर्धन को मछली दे या उसे मछली पकड़ना सिखाये?

हम गरीबी मिटाना चाहते हैं। लेकिन क्या हमें गरीब से वास्तव में सहानुभूति है?

हम चाहते हैं कि गरीबी दूर करने के कार्यक्रमों में निर्धन लोगों का भी सहयोग लिया जाये। हम इस जन भागीदारी की बात तो करते हैं लेकिन क्या हम यह तो नहीं सोच रहे कि स्वयं गरीबों को भी तो गरीबी दूर करने के बारे में सोचना चाहिये। अकेले हम ही गरीबी दूर करने की बात क्यों करें?

हम इस तरह की बातें करते जाते हैं लेकिन समस्या की जड़ को नहीं पकड़ते।

हम यह चाहते हैं कि गरीब लोग अपनी गरीबी दूर करने की सलाह लेने हमारे पास आयें। हम नहीं चाहते कि गरीब स्वयं इस बारे में कोई पहल करें। लेकिन हम अगर उन्हें संगठित होने की सलाह अगर देते भी हैं तो हम यह ध्यान रखते हैं कि उनका संगठन हमारी अफसरशाही के अधीन ही चले क्योंकि हमें आशंका रहती है कि वे हमसे मिली सहायता का दुरुपयोग करेंगे और फिर यह भी खतरा रहता है कि उनका संगठन तेजी से फैल कर हमारी सहायता व महत्व की उपेक्षा ही न करने लगे।

कार्यक्रम

इन प्रश्नों से निपटने के लिये हमने नगालैंड में एक कार्यक्रम तैयार किया। इसे हम सार्वजनिक कोष कार्यक्रम कह सकते हैं।

यह कार्यक्रम कुछ बुजुर्ग लोगों, कुछ नगाओं और कुछ गैर-नगा लोगों के विचार से सामने आया। उनके विचार युवा

पीढ़ी द्वारा वर्तमान भविष्य के बारे में उनकी शंकाओं के निवारण के लिये बातचीत के दौरान प्रकट हुये। आइये नीचे प्रस्तुत वार्तालाप पर गौर करें जो गांव के एक कार्य-निवृत्त वृद्ध मुख्या व उसके युवा पुत्र के बीच हुआ।

पुत्र : बाबा, आजकल हमारे गांव में इतने झगड़े क्यों होने लगे हैं?

पिता : बेटा, तुम्हारी पीढ़ी बड़ी झगड़ालू है।
पुत्र : दादाजी ने आपकी पीढ़ी के बारे में भी यही बात कही होगी।
पिता : नहीं, हम लोग इतना नहीं झगड़ते थे जितना तुम लोग झगड़ते हो।
पुत्र : तब फिर हम क्या करें?
पिता : तुम जानते हो हम लोगों का जंगल कहां है?
पुत्र : हां, जानता हूं।
पिता : तुम्हें मालूम है यह कहां तक फैला हुआ है?
पुत्र : हां, थोड़ा बहुत पता है।
पिता : पूरा नहीं जानते हो?
पुत्र : जी नहीं।
पिता : तुम लोगों में झगड़े अधिक इसलिये होते हैं क्योंकि तुम भूल गये हो कि तुम्हारी अपनी सम्पत्ति और सबकी सम्पत्ति की सीमा कौन सी है। झगड़े रोकने और खुश रहने के लिये सार्वजनिक हितों की देखभाल बड़ी जरूरी है। तुम्हें पता होना चाहिये कि सार्वजनिक क्या-क्या है, कहां है और फिर तुम्हें इसकी देखभाल का एक खुला, ईमानदार, निष्पक्ष तौर-तरीका बनाना चाहिये।

उपरोक्त वार्तालाप से स्पष्ट है कि पिता का विचार सार्वजनिक कोष कार्यक्रम की मूल अवधारणा है। यह कार्यक्रम सार्वजनिक सम्पत्ति की अवधारणा से निकला है। नगालैंड के गांवों में सार्वजनिक सम्पत्ति की अवधारणा हर तरफ व्याप्त है। इस बारे में आचार संहिता अलिखित पर सुस्पष्ट और सर्वविदित है। कोई भी जरूरतमंद आदमी गांव के मुखियाओं से अनुरोध करके सार्वजनिक जंगल से पेड़ काटकर घर बनाने के लिये ले जा सकता है या फिर सार्वजनिक भूमि के एक टुकड़े पर खेती कर सकता है।

सार्वजनिक कोष कार्यक्रम का उद्देश्य यह है कि :

1. गांव में परंपरागत सार्वजनिक सम्पत्ति में एक अन्य वस्तु जोड़ दी जाये।
2. गांव वासियों को कोष का संचालन खुले, निष्पक्ष तरीके से करने के लिये एक सार्वजनिक कोष समिति बनाने और चलाने को प्रोत्साहित किया जाये।
3. इस सार्वजनिक कोष समिति को गांव के लिये एक ऐसी विकास योजना तैयार करने के लिये प्रेरित किया जाये जो कि सार्वजनिक कोष तथा अन्य साधनों के कोष पर आधारित हो।
4. सार्वजनिक कोष समितियों के सदस्यों को प्रशिक्षण दे, उन्हें प्रोत्साहित करे, गांव की समस्यायें जानने में उनकी मदद करें, समाधान ढूंढने में सहायता करें, और उन्हें सोचने के लिये प्रेरित करें।
5. आम ग्रामवासी को सतर्क रखें, उसमें दिलचस्पी पैदा करें, सार्वजनिक कोष समिति के कामकाज में भाग लें और अपने सुझाव सामने रखने में हिचकिचाहट न करें।

सार्वजनिक कोष कार्यक्रम का उद्देश्य यह है कि सरकारी योजना तथा लोगों की इसमें भागीदारी को बदलकर लोगों की योजना तथा सरकार की इसमें भागीदारी बना दिया जाये। यह स्थिति लाने के लिये सार्वजनिक कोष समिति को आचार संहिता के रूप में नमूने के तौर पर संविधान तथा योजनाओं की एक सूची उपलब्ध करानी होगी। इस सम्बन्ध में 'नमूने के तौर' पर शब्दों पर विशेष बल दिया जाएगा जिसका अर्थ यह है कि गांव के लोग अपने अनुभवों के आधार पर इनमें संशोधन, परिवर्तन कर सकेंगे। "सार्वजनिक कोष कार्यक्रम" के पीछे एक अन्य मान्यता यह है कि लोगों में एक निहित शक्ति होती है, पर हमें इसका एहसास नहीं होता। लेकिन हम ऐसी परिस्थितियां तैयार कर सकते हैं जिनमें लोगों की यह अंतः शक्ति उजागर हो।

सार्वजनिक कोष कार्यक्रम पर लोगों की प्रतिक्रिया अरुचि व उदासीनता वाली भी हो सकती है। संभव है वे इसके प्रति उत्साह न दिखायें, इसकी तरफ ध्यान न दें। लेकिन नगालैंड सरकार ने इस संभावना से निपटने के लिये दोहरी नीति अपनायी।

प्रथम उपाय

प्रत्येक गांव के सार्वजनिक कोष में सरकार ने अंशदान किया। प्रत्येक गांव ने लंबी अवधि के लिये जितनी राशि पहले दो वर्षों में जमा की, उतनी ही राशि सरकार ने भी जमा करा दी।

शेष पृष्ठ 40 पर

ग्रामीण क्षेत्रों में विस्तार सेवा तथा ऋण सुविधाओं में समन्वय

आर. तिल्लैई गोविन्दन

कृषि और ऋण

भारतीय अर्थव्यवस्था मूख्य रूप से कृषि पर आधारित है। 1987 के अभूतपूर्व सूखे का हमारी अर्थव्यवस्था पर पड़े प्रभाव से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है। कृषि उत्पादन में कमी के कारण इस वर्ष विकास दर केवल 1.6 प्रतिशत रहने की आशा है। यद्यपि भारतीय कृषि बहुत हद तक मानसून की कृपा पर आश्रित है, किन्तु फिर भी बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकता के अनुरूप अनाज की उपज बढ़ाने के लिए सामान्य वर्षों में भी सिंचाई, श्रमिक, उर्वरक, कीटनाशक दवाएं जैसे अन्य कई पहलू भी काफी महत्वपूर्ण हैं। इन सब सुविधाओं की व्यवस्था करने के लिए भारतीय किसान के लिए कर्जे का बड़ा महत्व है। पिछले कुछ वर्षों से वित्तीय संस्थाएं कृषि ऋणों पर विशेष बल दे रही हैं। ऋण राशि में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। 1969 में 14 तथा 1980 में 6 और बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पश्चात कृषि ऋणों में काफी वृद्धि हुई है। जून 1969 तक व्यापारिक बैंकों द्वारा किसानों को 258 करोड़ रुपये के कर्जे दिए गए थे, जबकि जून 1985 में यह राशि बढ़कर 7621.4 करोड़ रुपये हो गई। अब वित्तीय संस्थानों तक किसानों की पहुंच कहीं ज्यादा है। 1969 में ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकों की 21833 शाखाएं थीं, जो अब बढ़कर 30000 के करीब हो गई हैं। ये बैंकों की कुल शाखाओं की 55 प्रतिशत हैं। बैंक किसानों को तात्कालिक काम चलाने, दीर्घकालीन उत्पादक संपत्तियों में पूंजी निवेश करने, भूमि का विकास करने, सिंचाई सुविधाएं बढ़ाने, कृषि यंत्र खरीदने, पशुपालन, भूमि को उपजाऊ बनाने, वृक्षारोपण, बागवानी, गोबर गैस तथा कृषि से संबंधित कई और कामों के लिए ऋण देते हैं।

ऋण का बड़े किसानों के लिए ही नहीं छोटे किसानों के लिए भी काफी महत्व है। वित्तीय संस्थाएं किसानों को महाजनों के चंगुल से मुक्त होने में मदद करती हैं। अब किसान अपनी जरूरतों के लिए वित्तीय संस्थाओं के पास जाना ज्यादा पसंद करते हैं। इन संस्थाओं का प्रयास यह रहता है कि ग्रामीण लोगों की आय बढ़े ताकि वे अपनी बुनियादी जरूरतें पूरी कर सकें।

टेक्नोलोजी और विस्तार सेवा

ऋण तथा कृषि आदानों की अधिक उपलब्धता से ही उत्पादन में क्रांति नहीं आ सकती थी। भारत के परम्परावादी किसान को आत्मनिर्भर बनाने में टेक्नोलोजी ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। बहुचर्चित हरित क्रांति टेक्नोलोजी के क्षेत्र में हुए विकास का ही परिणाम है। उर्वरकों के प्रभाव से अधिक उपज देने वाली किस्मों के विकास, आधुनिक कृषि तकनीकों के विकास, जल संरक्षण के उपायों, कीड़ों तथा रोगों के कारण नियंत्रण आदि के फलस्वरूप उत्पादन में बढ़ोतरी हुई।

जब तक प्रयोगशाला में विकसित तकनीक खेतों तक नहीं पहुंचती तब तक वैज्ञानिकों के प्रयासों का कोई लाभ नहीं हो सकता। केन्द्र तथा राज्य सरकारों ने प्रयोगशाला के ज्ञान को खेतों तक ले जाने के लिए अनेक कार्यक्रम चलाए हैं। इनमें कृषि विज्ञान केन्द्र, विस्तार प्रणाली तथा प्रशिक्षण आदि शामिल हैं।

वैज्ञानिक तथा विस्तार गतिविधियों में प्रचार के फलस्वरूप 1983-84 में अनाज का 15 करोड़ टन से अधिक का रिकार्ड उत्पादन हुआ। 1967-68 से 1984-85 के बीच कृषि उत्पादकता में 1.9 प्रतिशत वृद्धि हुई।

विस्तार कार्यकर्ताओं के प्रयासों के बावजूद सारी नई जानकारी किसानों तक नहीं पहुंच पाई है। ऐसी अनेक बातें हैं जो अभी किसानों ने नहीं आजमाई हैं। जिन लोगों ने नए तरीके स्वीकार कर भी लिए हैं, उन्होंने उन्हें बहुत कम या आंशिक स्तर पर अपनाया है। किसानों द्वारा नई तकनीक पूरी तरह न अपनाए जाने के कुछ कारण इस प्रकार हैं:—

1. समर्पित विस्तार कार्यकर्ताओं की कमी,
2. विस्तार कार्यकर्ताओं का अपर्याप्त प्रशिक्षण;

3. विस्तार कार्यकर्ताओं को कम दर्जा;
4. किसानों में निरक्षरता, अंधविश्वास तथा भाग्यवादी दृष्टिकोण;
5. विस्तार कार्यकर्ताओं और वैज्ञानिकों के बीच तालमेल का अभाव;
6. अधिकतर संख्या छोटे तथा बहुत छोटे किसानों की है; जिन्हें न ऋण मिलता है और न ही उनकी क्रय शक्ति है;
7. किसानों के लिए प्रशिक्षण की अपर्याप्त सुविधाएं;
8. विस्तार एजेंसियों और वित्तीय संस्थानों में तालमेल की कमी; और
9. ऋण संबंधी आवश्यकताओं तथा टेक्नोलोजी संबंधी मार्ग दर्शन में समन्वय का अभाव।

इनके अलावा और भी अनेक पहलू हैं, जो किसान द्वारा नई टेक्नोलोजी अपनाए जाने में बाधक हैं।

ऋण तथा विस्तार सेवाएं

कृषि कार्यों में पूंजी लगाकर आय बढ़ाने के मुख्यत: दो पहलू हैं। ये हैं:— ऋण तथा गैर-ऋण पहलू। पहले से तात्पर्य औपचारिक ऋण से तथा दूसरे से तात्पर्य उन गैर-ऋण बातों से है, जो पूंजी निवेश से लाभ लेने में सहायक हो सकती है। इनमें प्रारम्भिक स्तर पर या उसके बाद तकनीकी जानकारी में धन लगाना शामिल है। यदि कोई विस्तार कार्यकर्ता किसी किसान को नई तकनीक अपनाने की राय देता है तो वह उसके लिए मन से तैयार होते हुए भी नए साधनों के लिए धन की कमी की बात कह कर अपनी असमर्थता जता देता है। उस कार्यकर्ता के लिए किसान को धन दिलवाना असंभव है, क्योंकि विस्तार एजेंसियों और बैंकों में कोई तालमेल नहीं है।

जब कोई बैंक किसान को ऋण देता है तो उसे यह देखना चाहिए कि धन का इस्तेमाल किसान की आय बढ़ाने के लिए किया जाए, ताकि वह धन लौटा भी सके। ऋण दाता को नियमित रूप से किसान को पूंजी से अधिक लाभ लेने के बारे में सलाह देते रहना चाहिए। इसके लिए बैंक अधिकारियों को कृषि तथा अन्य संबंधित मामलों की तकनीकी जानकारी होनी चाहिए। ऐसा होने पर उनका किसानों से सजीव संपर्क बना रहेगा और किसान अधिक लाभान्वित हो पाएंगे। संभवत: इसी बात को ध्यान में रखते हुए अखिल भारतीय ग्रामीण ऋण समीक्षा समिति ने व्यापारिक बैंकों से कृषि स्नातकों को भी कर्मचारी के रूप में भर्ती करने की सिफारिश की थी। बाद में व्यापारिक बैंकों द्वारा कृषि ऋणों से संबंधित समिति ने उपरोक्त सिफारिश पर जोर देने के साथ-साथ यह भी कहा कि खाताधारियों को बेहतर सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए हर 450 या 500 खातों के पीछे एक कृषि क्षेत्र अधिकारी नियुक्त किया जाए। बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद विशेष रूप से कृषि ऋण व्यवस्था को बेहतर बनाने के उद्देश्य से बड़ी संख्या में कृषि तथा संबद्ध विषयों के स्नातकों को नियुक्त किया है। किन्तु बैंक की शाखाओं तथा खातों की बढ़ी हुई संख्या को देखते हुए इन स्नातकों की संख्या काफी कम है।

कृषि या ग्रामीण विकास अधिकारियों की मुख्य जिम्मेदारी कृषि ऋणों को बढ़ावा देना तथा उनकी वापसी सम्बंधी कार्यों की देखरेख करना है। इन अधिकारियों को ऋण लेने वालों का तकनीकी रूप से मार्गदर्शन भी करना चाहिए। उन्हें अन्य सरकारी विभागों के सहयोग से प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने चाहिए जहां किसानों को खेती की नई तकनीकों के लाभ बताए जाएं और उनकी समस्याओं पर विचार किया जाए। कुछ बैंक नई कृषि तकनीकों के बारे में प्रदर्शन कार्यक्रम आयोजित करते हैं। सभी बैंकों को ऐसा ही करना चाहिए। बैंकों को किसानों को ऋण के साथ-साथ तकनीकी जानकारी के रूप में गैर -ऋण सहायता देकर भी ग्रामीण विकास में भरपूर सहयोग देना चाहिए।

राष्ट्रीय कृषि तथा ग्रामीण विकास बैंक के माध्यम से ऋण/प्रदान प्रणाली को मजबूत बनाने की जो प्रायोगिक योजना देश के 15 जिलों में चलाई जा रही है उससे संकेत मिलता है कि बैंकों द्वारा तकनीकी मार्गदर्शन के साथ ऋण देने और उसकी देखरेख करने के अच्छे परिणाम हो सकते हैं। यदि इस व्यवस्था को पूरे देश में लागू किया जाए तो बहुत लाभ होगा। किन्तु यदि गैर-ऋण पहलू की अनदेखी करके केवल ऋण पर अधिक ध्यान दिया गया तो इसके विपरित परिणाम हो सकते हैं और इस योजना का उद्देश्य ही विफल हो सकता है। इसलिए ऋण तथा तकनीकी परामर्श में सूझबूझ के साथ समन्वय करना आवश्यक है। जिसके लिए सरकार तथा वित्तीय संस्थाएं मिलजुल कर नीति तय कर सकती हैं।

विस्तार सेवा और ऋण सुविधाओं में समन्वय के संबंध में कुछ सुझाव इस प्रकार हैं:

शेष पृष्ठ 31 पर

मध्य प्रदेश में भूमि सुधारों का प्रभाव – एक अध्ययन

डा.एच.सी जैन

भूमि सुधार कार्यक्रमों के जरिये भूमि का समान वितरण हमारी पंचवर्षीय योजनाओं का एक प्रमुख नीति संबंधी उद्देश्य रहा है। मध्य प्रदेश में भूमि सुधारों के प्रभाव का आकलन खेती वाली जोतों के वितरण के आकार से किया जाता है।

इस राज्य में जोतों और खेतीबाड़ी के बारे में पहली बार सर्वेक्षण वर्ष 1954-55 में किया गया तथा प्रत्येक व्यक्ति के पास जमीन की मात्रा, पट्टे पर दी गयी जमीन की मात्रा तथा निजी जुताई वाली जमीन के बारे में सूचना एकत्र की गयी। यह जानकारी वार्षिक भू-अभिलेखों पर आधारित थी तथा इसका उद्देश्य बड़ी जोतों पर अधिकतम सीमा लागू करने के नीति संबंधी निर्णय को कार्यान्वित करना था। ये आंकड़े केवल ग्रामीण क्षेत्र से एकत्र किये गये और इस बारे में सर्वेक्षण मालिकों की जोतों में खेती वाली भूमि के बारे में किया गया। इस सर्वेक्षण के अनुसार, राज्य में जोतों की संख्या 49.11 लाख थी जोकि 449.35 लाख एकड़ क्षेत्र में स्थित थी।

राज्य में दूसरा कृषि जोत सर्वेक्षण वर्ष 1967-68 में किया गया और इसके दौरान जोतों के ढांचे (कृषि भूमि) के बारे में आवश्यक आंकड़े एकत्र करने संबंधी भारत सरकार द्वारा तैयार मानक स्वरूप अपनाया गया। इसके लिये गांव को इकाई माना गया और गांवों की खसरा व किस्तबंदी को आधार माना गया। वर्ष 1954-55 व 1967-68 के सर्वेक्षणों में जोतों की एक जैसी व्याख्या नहीं की गयी थी इसलिये रिपोर्ट में इस बारे में विस्तृत चर्चा नहीं है।

कृषि सर्वेक्षण कृषि वर्ष 1970-71 (जुलाई 70 से जून, 71) के सम्बन्ध में किया गया। इसके लिये खेती वाली जोत को आधार माना गया। इस सर्वेक्षण का आधार खेती वाली जोत ही था। आंकड़े एकत्र करने के लिये तहसील को इकाई माना गया तथा पहली बार पूर्ण गणना विधि अपनायी गयी। कृषि संबंधी आंकड़े पटवारियों ने खसरा व जमाबंदी के आधार पर इकट्ठे किये।

इस सर्वेक्षण के अनुसार राज्य में खेती वाली जोतों की कुल संख्या 53 लाख थी जोकि 212 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में स्थित थी। इन जोतों का औसत आकार 4 हैक्टेयर था। इन जोतों की संख्या व आकार निम्नलिखित तालिका में दिया गया है। इन जोतों का वर्गीकरण बहुत छोटी, अर्ध-मध्यम, मध्यम व बड़ी आकार की जोतों में किया गया है।

तालिका 1

क्र.सं.	कृषकों की श्रेणी	जोतों का आकार	कुल जोत संख्या में प्रतिशत	जोतों के कुल क्षेत्र में प्रतिशत
1.	मामूली	1 हैक्टेयर से कम	32	3
2.	छोटे	1-2 हैक्टेयर	17	6
3.	अर्ध-मध्यम	2-4 हैक्टेयर	20	15
4.	मध्यम	4-10 हैक्टेयर	22	35
5.	बड़े	10 हैक्टेयर व इससे ऊपर	9	41
		कुल योग	100	100

इस तालिका से स्पष्ट है कि मामूली जोतों की संख्या सबसे अधिक थी लेकिन बड़ी जोतों का क्षेत्र सबसे अधिक था। राज्य में मामूली व छोटे किसानों की संख्या 48.6 प्रतिशत थी लेकिन वे केवल 9 प्रतिशत भूमि ही जोतते थे जबकि बड़े किसानों की संख्या केवल 9 प्रतिशत थी पर वे 41 प्रतिशत भूमि पर खेती कर रहे थे। इस तरह कुल जोतों में से आधी जोतें छोटे और मामूली किसानों की हैं।

निजी व संयुक्त जोतों के बारे में सर्वेक्षण से यह पता चला कि खेती वाली कुल जोतों में से 73 प्रतिशत निजी जोतें

थीं जिनका क्षेत्र कुल खेती वाले इलाके का 65 प्रतिशत था। बाकी 27 प्रतिशत संयुक्त जोतें थीं जोकि कुल क्षेत्र के 35 प्रतिशत में थीं। निजी जोतों में अधिकतम जोतें व क्षेत्र सीमांत किसानों की श्रेणी में था जबकि संयुक्त जोतों के मामले में सबसे अधिक जोतें व क्षेत्र मध्यम किसानों की श्रेणी में था। इस सर्वेक्षण से यह भी पता चला कि ज्यों-ज्यों जोतों का आकार बढ़ता है, प्रत्येक श्रेणी में निजी जोतों की संख्या का प्रतिशत घटता चला जाता है तथा जब आकार बढ़ता है तो संयुक्त जोतों का प्रतिशत बढ़ता है। इसका अर्थ यह है कि जोतों का आकार जितना बड़ा है, इसके संयुक्त कृषकों का प्रतिशत भी उतना ही अधिक होगा।

कृषि सर्वेक्षण 1976-77 के लिये आवश्यक सूचना भूमि अभिलेखों, गांवों के दस्तावेजों से एकत्र की गयी। खेती वाली जोतों तथा इनके कुल क्षेत्र की जानकारी सभी गांवों से एकत्र की गयी तथा भूमि उपयोग, विभिन्न फसलों वाले क्षेत्र व सिंचाई तथा भूमि पट्टों के बारे में जानकारी चुने हुये 20 प्रतिशत गांवों से की गयी।

इस सर्वेक्षण के अनुसार राज्य में 61 लाख जोतें थीं जो 217 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में फैली थीं। जोतों का औसत आकार 3.6 हैक्टेयर था जबकि 1970-71 के सर्वेक्षण में औसत आकार 4 हैक्टेयर था। निजी, संयुक्त व संस्थागत जोतों का औसत आकार क्रमशः 3.4, 4.8 व 16.6 हैक्टेयर था। निम्नलिखित तालिका में जोतों व जोतदारों की संख्या का विवरण दिया गया है।

तालिका 2

क्र. सं.	कृषकों की श्रेणी	जोतों का आकार वर्ग	श्रेणीवार जोतें संख्या	क्षेत्र	70-71 की तुलना में 76-77 में परिवर्तन का	
			कुल में प्रतिशत		प्रतिशत संख्या	प्रतिशत
1.	मामूली	1 हैक्टेयर से कम	33	4	17.5	20.5
2.	छोटे	1-2 हैक्टेयर	18	7	23.0	22.2
3.	अर्ध-मध्यम	2-4 हैक्टेयर	21	17	18.6	16.7
4.	मध्यम	4-10 हैक्टेयर	21	36	8.8	6.6
5.	बड़े	10 हैक्टेयर से ऊपर	7	36	(-) 7.5	(-) 10.8
		योग	100	100	14.4	2.3

तालिका से स्पष्ट होता है कि मामूली और छोटी जोतों की संख्या तो 51 प्रतिशत थी लेकिन उनके पास जमीन केवल 11 प्रतिशत थी। अर्ध-मध्यम व मध्यम दर्जे दोनों का औसत 21 प्रतिशत था और इनके अंतर्गत क्षेत्र क्रमशः 17 व 36 प्रतिशत था। राज्य में बड़े कृषकों की संख्या केवल 7 प्रतिशत थी लेकिन उनके पास जमीन 36 प्रतिशत से अधिक थी।

1970-71 के आंकड़ों से इन आंकड़ों की तुलना करने से पता चलता है कि राज्य में इन पांच वर्षों में कृषि की संख्या में 14.4 प्रतिशत की वृद्धि हुई और इन जोतों के क्षेत्र में भी 2.3 प्रतिशत बढ़ोतरी हुई। जोतों में यह वृद्धि इनमें विभाजन व नये जोतदारों के कारण हुई। क्षेत्र में वृद्धि विभिन्न व्यवस्थाओं के अंतर्गत लोगों को सरकारी जमीन के आबंटन के कारण हुई। मामूली, छोटे व अर्ध-मध्यम वर्ग के कृषकों की जोतों और क्षेत्र में काफी प्रतिशत वृद्धि हुई। बड़े कृषकों के मामले में जोतों की संख्या (7.5 प्रतिशत) के साथ-साथ क्षेत्र में भी (10.8 प्रतिशत) कमी आई। इससे पता चलता है कि बड़े कृषक भूमि सीमा के बारे में सचेत हो गये और कानून से बचने के लिए उन्होंने अपनी जोतों और क्षेत्र का आकार कम कर दिया। मामूली और छोटे किसानों को सहायता व रियायतों के कारण कई किसानों ने राजस्व अभिलेख में अपना नाम छोटे किसान के रूप में दर्ज करा दिया ताकि वे इनका लाभ उठा सकें।

राज्य में निजी व सयुंक्त जोतों संबंधी आंकड़ों से पता चलता है कि कुल कृषि जोतों में से 85.6 प्रतिशत निजी जोतें थीं, 14.3 प्रतिशत संयुक्त जोतें थीं व 0.1 प्रतिशत संस्थागत जोतें थीं। इनके अंतर्गत जमीन क्रमशः 80.7,19 व 0.3 प्रतिशत थी। इन पांच वर्षों में विभिन्न श्रेणियों की जोतों की स्थिति में भी परिवर्तन आया है। निजी जोतों के अंतर्गत कृषि जोतों की संख्या व क्षेत्र मुख्यतः इसलिये बढ़ी है क्योंकि संयुक्त जोतों में कमी आई है जिसका अर्थ यह है कि किसान जमीन के स्वामित्व व जुताई के मामले में संयुक्त नियंत्रण की जगह निजी नियंत्रण के हक में है।

निजी व संयुक्त जोतों के बारे में आगे विश्लेषण से यह भी पता चलता है कि इन श्रेणियों की अधिकांश जोतें मामूली किसानों के पास हैं और सबसे कम बड़े किसानों के पास थीं। जहां तक विभिन्न कृषक श्रेणियों के अंतर्गत निजी जोतों की जमीन के वितरण का संबंध है, कुल क्षेत्र का सबसे अधिक भाग मध्यम दर्जे के किसानों के पास था जबकि मामूली कृषकों के पास सबसे कम कृषि भूमि थी। प्रत्येक श्रेणी वाली जोतों का ज्यों-ज्यों आकार वर्ग बढ़ता है, इनके अंतर्गत क्षेत्र कम होता जाता है। अर्थात बड़े आकार की जोतों में क्षेत्र में

वृद्धि हुई जबकि कम आकार वाली जोतों के क्षेत्र में कमी आई। बड़ी जोतों की श्रेणी में सबसे अधिक संख्या व क्षेत्र संस्थागत वर्ग के अधीन था।

इसके पश्चात तीसरा कृषि भूमि सर्वेक्षण 1980-81 तक पूरे किये गए भूमि अभिलेखों के आधार पर 1981-82 वर्ष के दौरान किया गया। इस सर्वेक्षण में कृषि जोतों की संख्या व क्षेत्र, अवधि व पट्टेदारी तथा कृषि के अन्य पहलुओं संबंधी विवरण एकत्र किया गया। इस सर्वेक्षण में पहली बार अनुसूचित जातियों व जनजातियों की जोतों की जानकारी भी प्राप्त की गयी।

1980-81 के सर्वेक्षण के अनुसार 1976-77 के 60.61 लाख की तुलना में कृषि जोतों की संख्या बढ़कर 64.11 लाख हो गयी अर्थात यह संख्या लगभग 5.77 प्रतिशत बढ़ी। जोतों का क्षेत्र बढ़कर 219.31 लाख हैक्टेयर हो गया अर्थात 1970-71 में 216.91 लाख हैक्टेयर की तुलना में 1.1 प्रतिशत की वृद्धि हुई। लेकिन जोतों का औसत आकार कम होकर 3.4 हैक्टेयर हो गया जबकि 1976-77 में यह 3.6 हैक्टेयर था।

कुल जोतों में से अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जन-जातियों के लोगों की जोतों की संख्या क्रमशः 8.23 व 16.10 लाख थी जोकि कुल जोतों का क्रमशः 12.84 व 25.12 प्रतिशत थी। इन जोतों का कुल क्षेत्र क्रमशः 17.30 व 54.48 लाख हैक्टेयर था। ये सारी जोतों के कुल क्षेत्र का क्रमशः 7.89 व 24.84 प्रतिशत था। अनुसूचित जातियों के लोगों की जोतों की जमीन का औसत 2.10 हैक्टेयर और अनुसूचित जनजातियों के लोगों के पास जोतों का औसत आकार 3.38 हैक्टेयर था।

कुल जोतों में से 56.63 लाख निजी जोतें, 7.43 लाख संयुक्त जोतें व 0.105 लाख संस्थागत जोतें थीं। कुल जोतों में इनका प्रतिशत क्रमशः 85.12, 14.47 व 0.41 था। इस सर्वेक्षण का विवरण तालिका-3 में दिया गया है।

तालिका-3

क्र. सं.	कृषक श्रेणी	जोतों का वर्ग	कुल जोत संख्या में प्रतिशत		परिवर्तन	कुल जोत क्षेत्र में प्रतिशत		परिवर्तन
			76-77	70-71		70-71	76-77	
1.	मामूली	1 है. से कम	32.8	6.3	24.9	4.2	29.6	7.6
2.	छोटे	1-2 है.	19.1	12.0	37.7	8.2	36.0	11.3
3.	अर्ध-मध्यम	2-4 है.	21.4	8.4	28.5	17.7	25.5	7.6
4.	मध्यम	4-10 है.	19.9	0.7	9.3	35.9	7.1	0.5
5.	बड़े	10 है. से अधिक	6.8	(-) 4.4	(-)21.6	34.00	(-)14.5	(-)4.1
		योग	100	5.8	21.9	100	3.5	1.1

1976-77 की तुलना में वर्ष 1980-81 में राज्य में कृषि जोतों की संख्या व क्षेत्र में क्रमशः 5.8 व 1.1 प्रतिशत की वृद्धि हुई। बड़े कृषकों की जोतों की संख्या व क्षेत्र में क्रमशः 4.4 व 4.1 प्रतिशत कमी आयी। अन्य श्रेणियों के मामले में ऐसी कमी नहीं आयी। वर्ष 1970-71 व 1976-77 की तुलना में 1980-81 के दौरान जोतों की संख्या व आकार में परिवर्तन का औसत पहले से कम रहा।

राज्य में चौथा और हाल का कृषि भूमि सर्वेक्षण सभी गांवों में 1985-86 के भूमि अभिलेखों के आधार पर हुआ। इसके अनुसार राज्य में जोतों की संख्या 75.48 लाख थी और इनके अंतर्गत क्षेत्र 220.86 लाख हैक्टेयर था। वर्ष 1980-81 की तुलना में 1985-86 में जोतों की संख्या व क्षेत्र में क्रमशः 17.73 व 0.70 प्रतिशत की वृद्धि हुई। अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों की जोतों की संख्या क्रमशः 9.65 लाख व 18.45 लाख थी अर्थात कुल जोतों का 12.8 व 24.4 प्रतिशत थीं। इन दोनों वर्गों की जोतों का क्षेत्र क्रमशः 17.70 लाख हैक्टेयर व 55.2 लाख हैक्टेयर था। इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि 1980-81 की तुलना में 1985-86 के दौरान जोतों के औसत आकार में कमी आयी। अनुसूचित जातियों व जनजातियों के वर्गों के मामले में भी यही स्थिति थी। लेकिन 1980-81 की तरह 1985-86 में भी इन दोनों वर्गों का सकल अनुपात उतना ही रहा। निम्नलिखित तालिका में इस सर्वेक्षण का विवरण दिया गया है।

तालिका-4

क्र. सं.	कृषक श्रेणी	जोत आकार	1980-81 की तुलना में जोतों की कुल संख्या में अनुपात	1980-81 की तुलना में जोतों के कुल क्षेत्र में अनुपात		
1.	मामूली	1 है. से कम	35.8	28.40	5.5	29.84
2.	छोटे	1-2 है.	21.3	31.10	10.6	30.93
3.	अर्ध-मध्यम	2-4 है.	20.9	15.21	19.9	13.76
4.	मध्यम	4-10 है.	17.0	0.89	35.6	(-)0.14
5.	बड़े	10 है. से अधिक	5.0	(-)14.07	28.4	(-)16.06
	योग		100	17.73	100	0.70

इस सर्वेक्षण से स्पष्ट है कि 1985-86 में बड़े कृषकों की

संख्या व उनकी जोतों के आकार में भी काफी कमी आयी। मामूली और छोटे किसानों की जोतों की संख्या व क्षेत्र में वृद्धि बहुत अधिक हुई जिससे लगता है कि बड़ी जोतों के विभाजन से इनके मामूली और छोटी जोतों में बदल जाने का क्रम चला। यह प्रक्रिया सरकारी रियायतें प्राप्त करने और भू-सीमा कानूनों से बचने के लिये अपनायी गई। वर्ष 1980-81 की तुलना में 1985-86 के दौरान इस प्रक्रिया में काफ़ी तेजी देखी गयी।

1970-71 और 1985-86 के कृषि भूमि आंकड़ों की तुलना से पता चलता है कि राज्य में जोतों की संख्या तो 42.42 प्रतिशत बढ़ी है लेकिन इनके क्षेत्र में इन 15 वर्षों के दौरान केवल 4.21 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इन पंद्रह वर्षों में मध्य प्रदेश में जोतों की संख्या व क्षेत्र में हुये परिवर्तनों का विवरण निम्नलिखित तालिका में दिया गया है।

तालिका 5

क्रम सं.	कृषक श्रेणी	जोतों का आकार	जोतों की कुल संख्या में प्रतिशत	जोतों के कुल क्षेत्र में प्रतिशत
1.	मामूली	1 है.से. कम	60.38	68.27
2.	छोटे	1-2 है.	80.47	78.11
3.	अर्ध-मध्यम	2-4 है.	48.10	42.72
4.	मध्यम	4-10 है.	10.29	6.99
5.	बड़े	10 है. से ऊपर	24.60	28.19
	योग		42.42	4.21

इस तालिका के आधार पर ये निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं:—

1. पिछले 15 वर्षों में राज्य में छोटे किसानों की संख्या में 80.47 प्रतिशत वृद्धि हुई। इन जोतों के क्षेत्र में 78.11 प्रतिशत की वृद्धि हुई।
2. मामूली किसानों की संख्या व इनकी जोतों के क्षेत्र में क्रमशः 60.38 व 68.27 प्रतिशत की वृद्धि हुई।
3. अर्ध-मध्यम कृषकों की संख्या तो 48.10 प्रतिशत बढ़ी लेकिन इनकी जोतों के क्षेत्र में वृद्धि 42.72 प्रतिशत हुई, छोटे व मामूली किसानों की तरह इनकी संख्या में भी वृद्धि हुई।
4. बड़े कृषकों की संख्या में करीब 25 प्रतिशत कमी आयी और उनकी जोतों के क्षेत्रों में 28.19 प्रतिशत कमी हुई जिससे सरकार की भूमि सुधार नीति का प्रभाव दृष्टि गोचर होता है।
5. इन पंद्रह वर्षों में कृषकों की विभिन्न श्रेणियों की संख्या व क्षेत्र में परिवर्तन, विभाजन व अधिकार हस्तांतरण के जरिये होने से जोतों के सकल औसत आकार में कमी आयी।
6. संयुक्त स्वामित्व में कमी आयी, निजी स्वामित्व में वृद्धि हुई।

अनुवाद : ओम प्रकाश दत्त

पृष्ठ 27 का शेष

1. बैंकों को पर्याप्त संख्या में तकनीकी कर्मचारी नियुक्त करने चाहिए।
2. इन अधिकारियों को समय-समय पर नई कृषि टेक्नोलोजी की जानकारी के लिए कृषि विश्वविद्यालयों में प्रशिक्षण दिलाया जाए।
3. इनकी गतिविधियों के मूल्यांकन तथा निगरानी के लिए क्षेत्रीय कार्यालय/मुख्यालय में अलग विभाग होना चाहिए।
4. विस्तार गतिविधियां चलाने के लिए कुछ धन अलग से निर्धारित किया जाना चाहिए।
5. बैंकों तथा सरकारी और अन्य विस्तार एजेंसियों में बेहतर समन्वय लाना चाहिए।
6. बैंकों को अपने ग्राहकों को ऋण देने से पहले अन्य तकनीकी विभागों की मदद से उन्हें प्रशिक्षण देना चाहिए और
7. इन कामों को देखने वाले कर्मचारियों को दूसरा बैंकिंग कार्य नहीं सौंपा जाना चाहिए।

अनुवाद : सुभाष चन्द्र सेतिया

ग्राम्य मूलक दृष्टिकोण के पोषक हैं क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक

हरि विश्नोई

ग्रामीण क्षेत्रों में वित्तीय सुविधाओं को सुगम बनाने का सिलसिला हमारे देश में बहुत पुराना है। यह कार्य सर्व प्रथम सहकारिता आन्दोलन को सौंपा गया था फिर व्यापारिक बैंकों के सहयोग से ग्राम अडोप्सन स्कीम अमल में लाई गई लेकिन कृषि व ग्रामीण क्षेत्रों में निर्बल वर्ग की आशाएं फिर भी पूरी न हो सकीं। अतः एक नई संस्था की स्थापना की गई जिसे हम क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक कहते हैं। इसका सुझाव नरसिंघम कमेटी ने दिया था। अतः 1975 में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अध्यादेश जारी हुआ और इनके लिए एक नया अधिनियम बनाया गया 'क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अधिनियम 1976।'

ग्रामीण भारत के लिए नई रोशनी

आज देश भर में 191 ग्रामीण बैंक गाँववासियों की सेवा कर रहे हैं। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की लगभग डेढ़ दशक की यह यात्रा काफी उत्साहवर्धक रही क्योंकि पिछड़े हुए ग्रामीण क्षेत्रों में कमजोर वर्ग के लोगों को कृषि और अकृषि कार्यों के लिए ऋण की सुविधा अब अधिक आसान हो गई है। इन बैंकों में न तो व्यापारिक बैंकों की तरह व्यवहार और महंगा प्रबन्ध खर्च है और न सहकारी तन्त्र की सी कमजोरी क्योंकि यह तो एक मध्य मार्ग तलाशा गया था जिसमें कि उन दोनों की अच्छाइयों का समन्वित रूप पेश करने का संकल्प किया गया था। गांवों में किसी भी एजेंसी के लिए यह आवश्यक है कि उसमें वहां के क्षेत्रीयता की छवि स्पष्ट दिखाई दे। वहां के रहन सहन और बोलचाल आदि से यदि संस्था के कार्मिक वाकिफ हो तो उन्हें विश्वास का संकट नहीं होता। गांववासियों को अधिक अपनापन लगता है।

वित्तीय सुविधाओं का विस्तार

इसके अलावा व्यापारिक बैंकों को गांव में बिजनेस भी कम मिलता है। अतः वे गांवों में घाटा उठाने के लिए तैयार नहीं थे। यद्यपि अब गांवों में उनकी शाखाएं भी बढ़ रही हैं। लेकिन क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों ने ग्राम्य मूलक दृष्टिकोण अपनाकर सराहनीय कार्य किया है। अनेक लघु और सीमान्त किसानों, भूमिहीन मजदूरों, ग्रामीण कारीगरों तथा अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के सदस्यों को न्यूनतम ब्याज पर ऋण उपलब्ध करा कर क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों ने उन्हें साहूकारों और महाजनों के चुंगल से बचाया है। दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्रों में छोटी मोटी राशि की जमा स्वीकार कर बचत को प्रोत्साहन दिया है। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना के लिए कुल पूंजी में से भी आधा हिस्सा केन्द्रीय सरकार देती है और आधे में से प्रायोजक बैंक तथा राज्य सरकार का क्रमशः 35:15 का अंशदान रहता है। इन बैंकों में जमा किया गया जनता का धन बीमा एवं ऋण गारंटी निगम द्वारा सुरक्षित रहता है। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अपने अधिसूचित क्षेत्र यानि अधिकतम पांच जनपदों में ही कार्य करते हैं। देश का सबसे पहला बैंक मुरादाबाद में "प्रथम बैंक" के नाम से 2 अक्तूबर 1975 को खोला गया था।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का स्टाफ शहर में चल रही व्यापारिक बैंक शाखाओं की भांति गांवों के प्रति उदासीन नहीं होता। अतः ग्रामीणों को समय पर सरलता से ऋण मिल जाता है। यह निश्चय ही एक अच्छा संकेत है जो अंततः हमारे ग्रामीण विकास का पथ प्रशस्त करता है। क्षेत्रीय बैंकों की अपनी कुछ विशेषताएं भी हैं। जिनमें से प्रमुख हैं कि इनमें चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी नहीं होते। इन्हें सहकारी समितियों की भांति आय, लाभ और प्राप्तियों पर कर नहीं देना होता। कार्मिकों की भर्ती में स्थानीय लोगों को वरीयता दी जाती है। ऋण की सुविधा निर्बल वर्ग को दी जाती है। जमाकर्ताओं के द्वारा किए गए निक्षेपों पर उन्हें आधा प्रतिशत ब्याज अधिक मिलता है। ग्रामीण बैंकों को प्रभावी बनाने के उद्देश्य से लखनऊ में एक राष्ट्रीय ग्रामीण बैंक प्रशिक्षण संस्थान खोला गया है जिसमें ग्रामीण बैंकों के कार्मिकों को प्रशिक्षण दिया जाता है ताकि ये भविष्य में और अधिक तेजी से अपनी कुशलता और कार्यक्षमता में वृद्धि कर सकें। दरअसल ग्रमीण बैंको का कार्य बहुत चुनौती भरा है। उन्हें खास तौर पर उन इलाकों में सेवा, सुविधा और सहायता

का लक्ष्य लेकर कमजोर वर्ग तक जाना है, जहां संस्थागत वित्त की कोई अन्य एजेंसी नहीं पहुंच सकी है।

विकास पथ पर अग्रणी

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों में प्रायोजक बैंक और राज्य सरकारों ने विशेष भूमिका निभाई है। प्रबंधकीय एवं अन्य सहायता उपलब्ध कराने में इनके योगदान की चर्चा की जाती है। दरअसल ग्रामीण बैंकों के विस्तार एवं विकास के लिए यह जरूरी भी है। ग्रामीण बैंकों को अन्य संस्थाओं से समन्वय रखना होता है और राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण बैंक से इन्हें पुनर्वित्त की सहायता मिलती है। स्थानीय आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए, ये बैंक तकनीकी विशेषज्ञ नियुक्त करके वित्तीय सहायता प्राप्त कर सकते हैं। नाबार्ड भी ग्रामीण बैंको के विकास की आवश्यकता को महसूस करता है।

भारत सरकार और भारतीय रिजर्व द्वारा राज्य के पर्वतीय अंचल में तीन अतिरिक्त क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना से संबंधित प्रस्ताव अनुमोदित कर दिया गया था। अतः प्रस्तावित बैंकों में एक पिथौरागढ, दूसरा देहरादून, तीसरा उत्तरकाशी और टेहरी गढ़वाल तथा चमोली और पौढ़ी गढ़वाल में स्थापित किया। ये क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक भारतीय स्टेट बैंक की ओर से सभी आठ पर्वतीय जनपदों में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक हो जायेंगे। उत्तर प्रदेश राज्य के इक्यावन जनपदों में इनकी संख्या बढ़कर 39 हो गयी है।

कमजोर वर्गों के लिए

आशय यह नहीं कि इन बैंकों को लाभ को ओर ध्यान ही नहीं देना चाहिए। स्वाश्रयी होना तो किसी भी व्यापारिक संस्था के लिए अनिवार्य है। लेकिन ग्रामीण बैंकों के लिए बड़ी समस्या संदिग्ध ऋण की है। क्योंकि लाभांश को ऋण

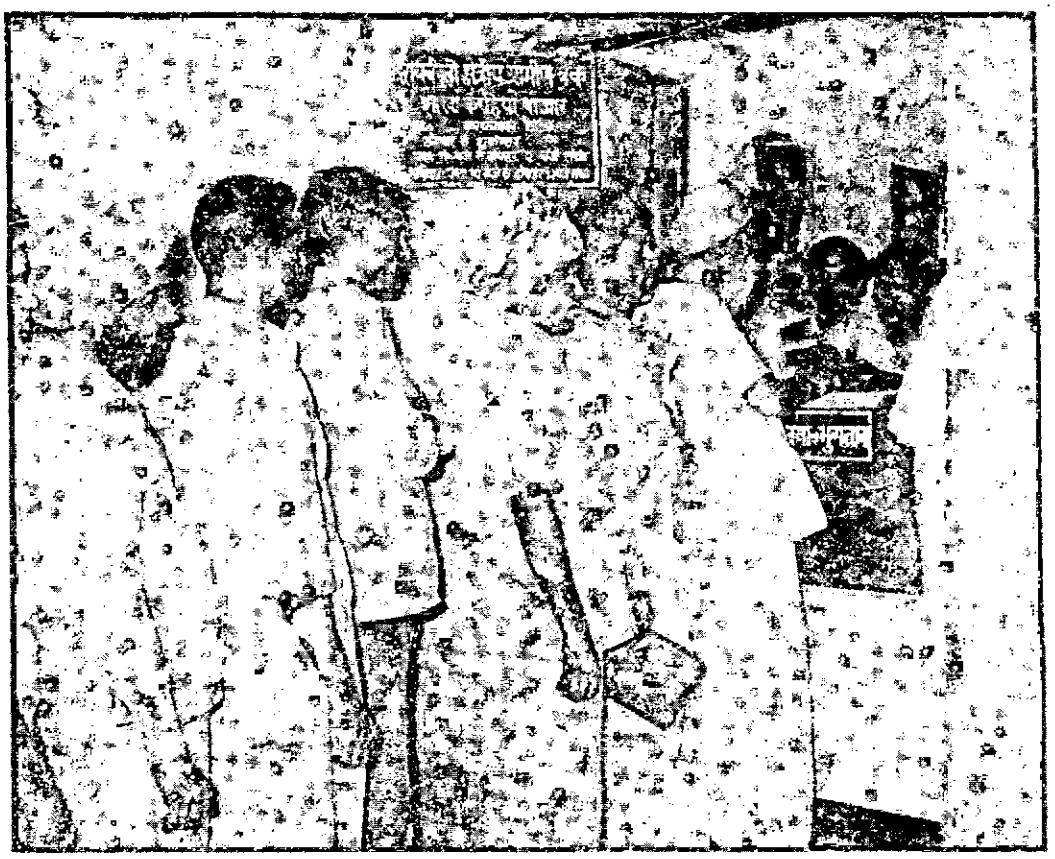

ग्रामीण बैंक द्वारा निर्बल वर्ग के लोगों को ऋण वितरण

मिलने के बाद उसकी आय के साधन बढ़ ही जायेंगे ऐसी कोई गारंटी नहीं मिलती। यदि ऋण का उपयोग सही न हो, उत्पादित वस्तुओं को बाजार न मिले या किसी अन्य कारण व्यवसाय ठप्प हो जाये तो वसूली होने की सम्भावना भी उतनी ही कम हो जाती हैं। इसलिए क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों में पर्यवेक्षित ऋण की व्यवस्था की गयी है कि ऋण प्रदान करने से पूर्व पात्रता को भी देख लिया जाये।

यह बात भी एक हद तक सच है कि कृषि एवं ग्रामीण विकास का कार्यक्रम कितना ही अच्छा क्यों न हो तब तक वह ग्राम्य जीवन को प्रभावित नहीं कर सकता जब तक उसे विस्तार अनुसंधान और वित्त की रोशनी नहीं मिल जाती। उन्नत बीज खाद विपणन और बैंकिंग की सुविधाएं आज भी कृषि क्षेत्र की बुनियादी आवश्यकताएं हैं। दूसरी ओर एक ऐसा वर्ग है जो खुद की जमीन पर खेती तो नहीं करता लेकिन किसी न किसी तरह खेती पर निर्भर रहता है। भूमिहीन मजदूर और ग्रामीण शिल्पी आदि अनेक लोग हैं जो कुछ न कुछ करना तो चाहते हैं लेकिन गरीबी के हाथों मजबूर हैं।

अग्रणी भूमिका : बीस सूत्री कार्यक्रम के अन्तर्गत खास तौर पर पहले, छठे और ग्यारहवें सूत्र में इस बात की व्यवस्था की गयी है कि गरीबी उन्मूलन, ग्रामीण मजदूरों के लिए विशेष कार्यक्रम और अनु. जातियों तथा जनजातियों को न्याय प्रदान करने पर बल दिया जायेगा। इसीलिये गांव-गांव में बैंक शाखाएं खोली गयी हैं ताकि गरीबों और बेरोजगारों को पूंजी उपलब्ध करायी जा सके और वे खुद अपने पांवों पर खड़े हो सकें। जनकल्याण के इस व्यापक कार्य से एक ओर जहां निर्धन ग्रामीणों को आशा बंधी है, तो वहीं दूसरी ओर ग्रामीण अर्थ व्यवस्था को सुधारने की दिशा में सरकार का प्रयास सफल हुआ, जोकि बेहद जरूरी था।

राष्ट्रीयकरण के पश्चात् बैंकों ने ग्रामीण विकास के क्षेत्र में अपनी भूमिका निभाते हुए बड़ी तेजी से कार्य किया और 1969 से 1984 तक के काल में 25,579 शाखाएं ग्रामीण क्षेत्रों में खोली गयीं। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना हो जाने से गांवों में ऋण सम्बन्धी मांगे पूरी होने लगी और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में बड़ी तेजी से सुधार हुआ। 1978 तक देश में कुल 1753 ग्रामीण बैंक शाखाएं थीं किन्तु वर्ष 1984 तक इनकी संख्या बढ़कर 9836 हो गयी थी और अब इन बैंकों की शाखाएं 15000 से भी अधिक हैं। साथ ही साथ प्रतिवर्ष इन बैंकों से लाभ उठाने वालों की संख्या में भी भारी वृद्धि होती जा रही है, निस्सन्देह यह स्थिति स्वागत योग्य कही जाएगी।

दरअसल ग्रामीणों को अब इस बात का पता चल चुका है कि वे ग्रामीण बैंकों की मदद से अपने आर्थिक जीवन में सुधार ला सकते हैं। लेकिन उन्हें यह कदापि नहीं भूलना चाहिए कि कृषि एवं लघु उद्योग धन्धों के लिए जो ऋण सुविधा उन्हें मिलती है, उसकी अदायगी समय से सुनिश्चित करनी परम आवश्यक है। यह बात तभी सम्भव हो सकती है, जबकि ऋण की धनराशि उसी कार्य में लगायी जाए, जिसके लिए वह मिली है। अनुत्पादक कार्यों जैसे शादी-विवाह, मुंडन और मृत्यु भोज आदि में खर्च किया फसली ऋण अदा करना मुश्किल हो जाता हैं और यही सब बातें ग्रामीण बैंकों का सिर दर्द बन जाती है अतः ग्रामीणों को भी अपना दायित्व पूरी सजगता से निभाना चाहिये।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद से हमारे देश में जो नियोजित विकास यात्रा शुरू हुई है, उसमें कृषि उत्पादन में वृद्धि तथा गांवों के सर्वांगीण विकास हेतु खर्च किए जाने वाले खर्च में बराबर बढ़ोतरी हुई है। क्योंकि इस दिशा में समय-समय पर अनेक कार्यक्रमों को शुरू किया गया। फलस्वरूप गरीबी, भुखमरी और शोषण से मुक्त होने के लिए हमारे गांव-वासियों को अब जूझना नहीं पड़ता वे अब राहत महसूस करने लगे हैं।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों ने गांव-गांव में शाखाएं खोलकर किसानों को महाजनी चंगुल से बचाने का जो बीड़ा उठाया है, उसमें ग्राम्य स्तर से प्रयास शुरू किए गए हैं ताकि गरीबी से जूझने वाले लोगों को भी आत्म निर्भरता का सुख प्राप्त हो सके। हालांकि गांवों में ऋण तथा अनुदान देने का काम सहकारी समितियों ने किया, लेकिन बैंकिंग सुविधाएं देने में उन्हें सफलता नहीं मिली। यद्यपि उन्होंने भी मिनी-बैंक योजना चलायी, लेकिन गरीबी की रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले करोड़ों लोगों की स्थिति में वह अपेक्षित बदलाव नहीं आ सका, जो आना जरूरी था। यह देखते हुए कृषि एवं अकृषि कार्यों तथा ग्रामीण विकास के अर्थ तंत्र को आवश्यकतानुकूल चुस्त एवं प्रभावी बनाए जाने की दिशा में ग्रामीण बैंकों का योगदान महत्वपूर्ण रहा।

ग्रामीण बैंकों ने जनता का ध्यान अपनी ओर काफी आकर्षित किया है विशेषकर निर्बल वर्ग में तो आशा की

शेष पृष्ठ 38 पर

सेवा सेर गेहूँ

प्रेमचन्द

किसी गाँव में शंकर नाम का एक कुरमी किसान रहता था। सीधा-साधा गरीब आदमी था, अपने काम से काम, न किसी के लेने में न देने में। छक्का-पंजा न जानता था; छल-प्रपंच की उसे छूत भी न लगी थी, ठगे जाने की चिन्ता न थी, ठग-विद्या न जानता था। भोजन मिला खा लिया, न मिला चबेने पर काट दी, चबेना भी न मिला तो पानी पी लिया, और राम का नाम लेकर सो रहा। किन्तु जब कोई अतिथि द्वार पर आ जाता था तो उसे इस निवृतिमार्ग का त्याग करना पड़ता था। विशेष कर जब साधु-महात्मा पदार्पण करते थे तो अनिवार्यतः सांसारिकता की शरण लेनी पड़ती थी। खुद भूखा सो सकता था पर साधु को कैसे भूखा सुलाता ? भगवान के भक्त ठहरे!

एक दिन संध्या समय एक महात्मा ने आकर उसके द्वार पर डेरा जमाया। तेजस्वी मूर्ति थी, पीताम्बर गले में, जटा सिर पर, पीतल का कमंडल हाथ में, खड़ाऊँ पैर में, ऐनक आँखों पर। संपूर्ण वेश उन महात्माओं का सा था जो रईसों के प्रासादों में तपस्या, हवागाड़ियों पर देवस्थानों की परिक्रमा और योगसिद्धि प्राप्त करने के लिए रुचिकर भोजन करते हैं। घर में जौ का आटा था, वह उन्हें कैसे खिलाता। प्राचीन काल में जौ का चाहे जो कुछ महत्व रहा हो, पर वर्तमान युग में जौ का भोजन सिद्ध पुरुषों के लिए दुष्पाच्य होता है। बड़ी चिंता हुई, महात्मा जी को क्या खिलाऊँ। आखिर निश्चय किया कि कहीं से गेहूँ का आटा उधार लाऊँ, पर गाँव भर में गेहूँ का आटा न मिला। गाँव में सब मनुष्य थे, देवता एक भी न था, अतः देवताओं का पदार्थ कैसे मिलता ? सौभाग्य से गांव के विप्र महाराज के यहाँ से थोड़े से गेहूँ मिल गये। उसने सवा सेर गेहूँ उधार लिया और स्त्री से कहा कि पीस दे। महात्मा जी ने भोजन किया, लम्बी तान कर सोये। प्रातःकाल आशीर्वाद देकर अपनी राह ली।

विप्र महाराज साल में दो बार खलिहानी किया करते थे। शंकर ने दिल में कहा – सवा सेर गेहूँ इन्हें क्या लौटाऊं, पसेरी के बदले कुछ ज्यादा खलिहान दे दूँगा, यह भी समझ जायेंगे, मैं भी समझ जाऊँगा। चैत में जब विप्र जी पहुंचे तो उन्हें डेढ़ पसेरी के लगभग गेहूँ दे दिया और अपने को उऋण समझ कर उसकी कोई चर्चा न की। विप्रजी ने फिर कभी न माँगा। सरल शंकर को क्या मालूम था कि यह सवा सेर गेहूँ चुकाने के लिए उसे दूसरा जन्म लेना पड़ेगा।

सात साल गुजर गये। विप्र जी विप्र से महाराज हुए, शंकर किसान से मजूर हो गया। उसका छोटा भाई मंगल उससे अलग हो गया था। एक साथ रहकर दोनों किसान थे, अलग होकर मजूर हो गये थे। शंकर ने चाहा कि द्वेष की आग भड़कने न पाये, किन्तु परिस्थिति ने उसे विवश कर दिया। जिस दिन अलग-अलग चूल्हे जले, वह फूट-फूट कर रोया। आज से भाई-भाई शत्रु हो जायेंगे, एक रोयेगा तो दूसरा हँसेगा, एक के घर मातम होगा तो दूसरे के घर गुलगुले पकेंगे। प्रेम का बंधन, खून का बंधन, दूध का बंधन आज टूटा जाता है। उसने भगीरथ परिश्रम से कुलमर्यादा का वृक्ष लगाया था, उसे अपने रक्त से सींचा था, उसको जड़ से उखड़ता देखकर उसके हृदय के टुकड़े हुए जाते थे। सात दिनों तक उसने दाने की सूरत तक न देखी। दिन भर जेठ की धूप में काम करता और रात को मुँह लपेट कर सो रहता। इस भीषण वेदना और दुस्सह कष्ट ने रक्त को जला दिया, माँस और मज्जा को घुला दिया। बीमार पड़ा तो महीनों तक खाट से न उठा। अब गुजर-बसर कैसे हो? पाँच बीघे के आधे खेत रह गये,एक बैल रह गया, खेती क्या खाक होती। अंत को यहाँ तक नौबत पहुँची कि खेती केवल मर्यादा रक्षा का साधनमात्र रह गयी। जीविका का भार मजूरी पर आ पड़ा।

सात वर्ष बीत गये, एक दिन शंकर मजूरी करके लौटा तो राह में विप्र जी ने टोक कर कहा-शंकर, कल आके अपने बीज बेंग का हिसाब कर ले। तेरे यहाँ साढ़े पाँच मन गेहूँ कब के बाकी पड़े हुए है और तू देने का नाम नहीं लेता, हजम करने का मन है क्या?

शंकर ने चकित हो कहा-मैंने तुमसे कब गेहूँ लिये थे जो

साढ़े पाँच मन हो गये ? तुम भूलते हो, मेरे यहाँ किसी का न छटाँक भर अनाज है, न एक पैसा उधार।

विप्र-इसी नीयत का तो यह फल भोग रहे हो कि खाने को नहीं जुड़ता।

यह कहकर विप्र ने उस सवा सेर का जिक्र किया, जो आज से सात वर्ष पहले शंकर को दिया था। शंकर सुनकर अवाक् रह गया। ईश्वर ! मैंने इन्हें कितनी बार खलिहानी दी, इन्होंने मेरा कौन-सा काम किया? जब पोथी-पत्रा देखने, साइत-सगुन विचारने द्वार पर आते थे, कुछ न कुछ 'दक्षिणा' ले ही जाते थे। इतना स्वार्थ ! सवा सेर अनाज को अंडे की भाँति से कर आज यह पिशाच खड़ा कर दिया, जो मुझे निगल जायेगा। इतने दिनों में एक बार भी कह देते तो मैं गेहूँ तोल कर दे देता, क्या इसी नीयत से चुप साधे बैठे रहे। बोला -महाराज, नाम लेकर तो मैंने उतना अनाज नहीं दिया, पर कई बार खलिहानी में सेर-सेर दो-दो सेर दिया है। अब आप साढ़े पांच मन माँगते हैं, मैं कहाँ से दूँगा ?

विप्र – लेखा जौ-जौ, बखसी सौ-सौ ! तुमने जो कुछ दिया होगा, उसका कोई हिसाब नहीं। चाहे एक की जगह चार पसेरी दे दो। तुम्हारे नाम ही में साढ़े पाँच मन लिखा हुआ है जिससे चाहो हिसाब लगवा लो। दे दो तुम्हारा नाम छेंक दूँ, नहीं तो और भी बढ़ता रहेगा।

शंकर – पांडे, क्यों गरीब को सताते हो, मेरे खाने का ठिकाना नहीं, इतना गेहूँ किसके घर से लाऊँगा ?

विप्र – जिसके घर से चाहो लाओ, मैं छटाँक भर न छोड़ूंगा, यहाँ न दोगे, भगवान के घर दोगे।

शंकर कांप उठा। हम पढ़े-लिखे आदमी होते तो कह देते अच्छी बात है, ईश्वर के घर ही देंगे। वहाँ की तोल यहां से कुछ बड़ी तो न होगी। कम-से कम इसका कोई प्रमाण हमारे पास नहीं, फिर उसकी क्या चिंता। किन्तु शंकर इतना तार्किक, इतना व्यवहार -चतुर न था। एक तो ऋण -वह भी ब्राह्मण का-बही में नाम रह गया तो सीधे नरक में जाऊंगा इस ख्याल से उसे रोमांच हो आया। बोला –महाराज, तुम्हारा जितना होगा यहीं दूँगा, ईश्वर के यहाँ क्यों दें, इस जन्म में तो ठोकर खा रहा हूँ, उस जन्म के लिए क्यों काँटे बोऊँ। मगर यह कोई नियाव नहीं है। तुमने राई का पर्वत बना दिया है ब्राह्मण होके तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था। उसी घड़ी तगादा करके ले लिया होता, तो आज मेरे सिर पर इतना बड़ा बोझ क्यों पड़ता ? मैं तो दूँगा, लेकिन भगवान के यहां जवाब देना पड़ेगा।

विप्र – वहाँ का डर तुम्हें होगा, मुझे क्यों होने लगा। वहाँ तो सब अपने ही भाई-बंधु हैं। ऋषि-मुनि सब तो ब्राह्मण हैं जो कुछ बने बिगड़ेगी, संभाल लेंगे। तो कब देते हो?

शंकर – मेरे पास रखा नहीं, किसी से माँग-जाँच कर लाऊँगा तभी न दूँगा!

विप्र – मैं यह न मानूंगा। सात साल हो गये, अब एक दिन का भी मुलाहिजा न करूँगा। गेहूँ नहीं दे सकते, दस्तावेज लिख दो।

शंकर – मुझे तो देना है, चाहे गेहूँ लो, चाहे दस्तावेज लिखाओ। किस हिसाब से दाम रखोगे ?

विप्र – बाजार भाव पाँच सेर का है, तुम्हें सवा पाँच सेर का काट दूँगा।

शंकर – जब दे ही रहा हूँ तो बाजार-भाव काटूँगा, पाव भर छुड़ा कर क्यों दोषी बनूँ।

हिसाब लगाया तो गेहूँ का दाम साठ रुपये हुए। साठ रुपये का दस्तावेज लिखा गया, तीन रुपया सैकड़े का सूद। साल भर में न देने पर सूद का दर साढ़े तीन रुपये सैकड़े, बारह आने का स्टाम्प, एक रुपया दस्तावेज की तहरीर शंकर को ऊपर से देनी पड़ी।

गाँव भर ने विप्र जी की निन्दा की, लेकिन मुँह पर नहीं। महाजन से सभी को काम पड़ता है, उसके मुँह कौन आये।

शंकर ने साल भर कठिन तपस्या की। मीयाद के पहले रुपया अदा करने का उसने व्रत -सा कर लिया। दोपहर को पहले भी चूल्हा न जलता था, चबेने पर बसर होती थी, अब वह भी बंद हुआ। अकेले लड़के के लिए रात को रोटियां रख दी जातीं। पैसे रोज का तम्बाकू पी जाता था। यही एक व्यसन था जिसका वह कभी त्याग न कर सका था। अब वह व्यसन भी इस कठिन व्रत के भेंट हो गया। उसने चीलम पटक दी, हुक्का तोड़ दिया और तम्बाकू की हाँडी चूर-चूर कर डाली। कपड़े पहले ही त्याग की चरम सीमा तक पहुँच चुके

थे, अब वह प्रकृति की न्यूनतम रेखाओं में आबद्व हो गये। शिशिर की अस्थि-वेधक शीत को उसने आग ताप कर काट दिया। इस ध्रुव -संकल्प का फल आशा से बढ़ कर निकला। साल के अन्त में उसके पास साठ रुपये जमा हो गये। उसने समझा पण्डित जी को इतने रुपये दे दूंगा और कहूंगा, महाराज बाकी रुपये भी जल्दी ही आपके सामने हाजिर करूंगा। पन्द्रह रुपये की तो और बात है क्या पंडित जी इतना भी न मानेंगे ? उसने रुपये लिए और ले जा कर पंडित जी के चरण-कमलों पर अर्पण कर दिये। पंडित जी ने विस्मित होकर पूछा – किसी से उधार लिये क्या ?

शंकर – नहीं महाराज, आपके असीस से अब की मजूरी अच्छी मिली।

विप्र – लेकिन यह तो साठ रुपये ही हैं!

शंकर – हाँ, महाराज, इतने अभी लीजिए, बाकी दो-तीन महीने में दूँगा, मुझे उरिन कर दीजिए।

विप्र – उरिन तो तभी होगे जब मेरी कौड़ी-कौड़ी चुका दोगे। जाकर मेरे पन्द्रह रुपये और लाओ।

शंकर – महाराज, इतनी दया करो, अब साँझ की रोटियों का भी ठिकाना नहीं, गाँव में हूँ तो कभी न कभी दे ही दूँगा।

विप्र – मैं यह रोग नहीं पालता, न बहुत बातें जानता हूँ। अगर पूरे रुपये न मिलेंगे तो आज से साढ़े तीन रुपये सैकड़े का ब्याज लगेगा। अपने रुपये चाहे अपने घर में रखो चाहे मेरे यहाँ छोड़ जाओ।

शंकर– अच्छा, जितना लाया हूँ, उतना रख लीजिए। जाता हूँ, कहीं से पन्द्रह रुपये और लाने की फिक्र करता हूँ।

शंकर ने सारा गाँव छान मारा, मगर किसी ने रुपये न दिये, इसलिए नहीं कि उसका विश्वास न था, या किसी के पास रुपया न था, बल्कि इसलिए कि पंडित जी के शिकार को छेड़ने की किसी में हिम्मत न थी।

क्रिया के पश्चात प्रतिक्रिया नैसर्गिक नियम है। शंकर साल भर तक तपस्या करने पर जब ऋण से मुक्त होने में सफल न हो सका तो उसका संयम निराशा के रूप में परिणित हो गया। उसने समझ लिया कि जब इतना कष्ट सहने पर भी साल भर में साठ रुपये से अधिक जमा न कर सका तो अब और कौन-सा उपाय है जिसके द्वारा उससे दूने रुपये जमा हों। जब सिर पर ऋण का बोझ ही लदना है तो क्या मन का और क्या सवा मन का। उसका उत्साह क्षीण हो गया, मेहनत से घृणा हो गयी। आशा उत्साह की जननी है, आशा में तेज है, बल है, जीवन है। आशा ही संसार की संचालक शक्ति है। शंकर आशाहीन होकर उदासीन हो गया। वे जरूरतें जिनको उसने साल भर तक टाल रखा था, अब द्वार पर खड़ी होने वाली भिखारिणी न थीं बल्कि छाती पर सवार होने वाली पिशाचिनियाँ थीं जो अपने भेंट लिये बिना जान नहीं छोड़तीं। कपड़ों में चकतियों के लगने की भी एक सीमा होती है। अब शंकर को चिट्टा मिलता तो वह रुपये जमा न करता। कभी कपड़े लाता, कभी खाने को कोई वस्तु। जहाँ पहले तमाखू ही पिया करता था, वहाँ अब गाँजे और चरस का चस्का भी लगा। उसे अब रुपये अदा करने की कोई चिंता न थी मानो उसके ऊपर किसी का एक पैसा नहीं आता। पहले जूड़ी चढ़ी होती थी, पर वह काम करने अवश्य जाता था। अब काम पर न जाने के लिए बहाना खोजा करता।

इस भाँति तीन वर्ष निकल गये। विप्रजी महाराज ने एक बार भी तकाजा न किया। वह चतुर शिकारी की भाँति अचूक निशाना लगाना चाहते थे। पहले से शिकार चौंकाना उनकी नीति के विरुद्ध था।

एक दिन पंडित जी ने शंकर को बुला कर हिसाब दिखाया। साठ रुपये जो जमा थे वह मिनहा करने पर भी शंकर के जिम्मे एक सौ बीस रुपये निकले।

शंकर – इतने रुपये तो उसी जन्म में दूँगा, इस जन्म में नहीं हो सकते।

विप्र – मैं इसी जन्म में लूँगा। मूल न सही, सूद तो देना ही पड़ेगा।

शंकर – एक बैल है, वह ले लीजिए, एक झोंपड़ी है, वह ले लीजिए और मेरे पास क्या रखा है ?

विप्र – मुझे बैल-बधिया ले कर क्या करना है। मुझे देने को तुम्हारे पास बहुत कुछ है।

शंकर – और क्या है महाराज?

विप्र – कुछ नहीं है तुम तो हो। आखिर तुम भी कहीं मजूरी करने जाते ही हो, मुझे भी खेती के लिए मजूर रखना

ही पड़ता है। सूद में हमारे यहाँ काम किया करो, जब सुभीता हो मूल दे देना। सच तो यों है कि अब तुम किसी दूसरी जगह काम करने नहीं जा सकते, जब तक मेरे रुपये नहीं चुका दो। तुम्हारे पास कोई जायदाद नहीं है, इतनी बड़ी गठरी मैं किस एतबार पर छोड़ दूँ। कौन इसका जिम्मा लेगा कि तुम मुझे महीने-महीने सूद देते जाओगे ? और कहीं कमा कर जब तुम मुझे सूद भी नहीं दे सकते, तो मूल की कौन कहे ?

शंकर – महाराज, सूद में तो काम करूँगा और खाऊँगा क्या?

विप्र-तुम्हारी घरवाली है, लड़के हैं, क्या वे हाथ-पाँव कटा के बैठेंगे। रहा मैं, तुम्हें आध सेर जौ रोज कलेवा के लिए दे दिया करूँगा। औढ़ने को साल में एक कम्बल पा जाओगे, एक मिरजई भी बनवा दिया करूँगा, और क्या चाहिए ? यह सच है कि और लोग तुम्हें छः आने रोज देते हैं लेकिन मुझे ऐसी गरज नहीं है, मैं तो तुम्हें अपने रुपये भराने के लिए रखता हूँ।

शंकर ने कुछ देर तक गहरी चिंता में पड़े रहने के बाद कहा – महाराज, यह तो जन्म भर की गुलामी हुई।

विप्र – गुलामी समझो, चाहे मजदूरी समझो। मैं अपने रुपये भराये बिना तुमको कभी न छोड़ूँगा। तुम भागोगे तो तुम्हारा लड़का भरेगा। हाँ, जब कोई न रहेगा तब की दूसरी बात है।

इस निर्णय की कहीं अपील न थी। मजूर की जमानत कौन करता ? कहीं शरण न थी, भाग कर कहाँ जाता ? दूसरे दिन उसने विप्र जी के यहाँ काम करना शुरू कर दिया। सवा सेर गेहूँ की बदौलत उम्र भर के लिए गुलामी की बेड़ी पैरों में डालनी पड़ी। उस अभागे को अब अगर किसी विचार से संतोष होता था तो यह था कि यह मेरे पूर्वजन्म का संस्कार है। स्त्री को वे काम करने पड़ते थे जो उसने कभी न किये थे, बच्चे दानों को तरसते थे, लेकिन शंकर चुपचाप देखने के सिवा कुछ न कर सकता था। गेहूँ के दाने किसी देवता के शाप की भाँति आजीवन उसके सिर से न उतरे।

शंकर ने विप्र जी के यहाँ बीस वर्ष तक गुलामी करने के बाद इस दुस्सार संसार से प्रस्थान किया। एक सौ बीस रुपये अभी तक उसके सिर पर सवार थे। पण्डित जी ने उस गरीब को ईश्वर के दरबार में कष्ट देना उचित न समझा, इतने अन्यायी नहीं, इतने निर्दयी वे न थे। उसके जवान बेटे की गरदन पकड़ी। आज तक वह विप्र जी के यहाँ काम करता है। उसका उद्धार कब होगा, होगा भी या नहीं, ईश्वर ही जानें।

पाठक, इस वृतांत को कपोलकल्पित न समझिए। यह सत्य घटना है। ऐसे शंकरों और ऐसे विप्रों से दुनिया खाली नहीं है। □

पृष्ठ 34 का शेष

किरण का संचार किया। ग्रामीण कारीगरों, मजदूरों आदि की आर्थिक गतिविधियों को प्रतिनिहित करने में जो क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक आर्थिक जगत में सक्षम और विश्वसनीय संस्थाओं के रूप में उभर कर सामने आए हैं। ऋण वितरण की कमी वाले अंचलों में इन्होंने एक बड़ी रिक्तता को पूरा किया है। क्योंकि ग्रामीण समुदाय इनकी शाखाओं तक आसानी से पहुंच सकता है। इनकी शाखाओं की संख्या में प्रर्याप्त वृद्धि हुई है। लेकिन अभी भी इन्हें और बहुत सी मंजिलें तय करनी हैं। इनके सामने विशाल भारत है। लेकिन अधिकांश ग्रामीण बैंक दो जिलों तक ही सीमित हैं। अतः अपने ग्राम्य मूलक दृष्टि कोण का लाभ इन्हें अधिकाधिक ग्रामीण जनता तक पहुंचाना है ताकि आर्थिक दृष्टि से पिछड़े लोग भी अपना जीवन स्तर ऊंचा उठा सकें। ग्रामीण भारत में निःसन्देह इनकी भूमिका प्रशंसनीय है। केन्द्रीय सरकार, नाबार्ड, प्रायोजक बैंकों तथा राज्य सरकारों को इन्हें भर्ती, प्रशिक्षण तथा कुशल प्रबन्ध आदि के क्षेत्रों में अधिकाधिक सहायता प्रदान करनी चाहिये। खास तौर से उन बैंकों पर तो शीघ्र ध्यान दिया जाना जरूरी है, जो आर्थिक घाटे के भंवर में फंसे हुए हैं। बेहतर प्रबन्ध से ग्रामीण बैंकों को प्रगति के मार्ग पर तेजी से आगे बढ़ाया जा सकता है। यह बात निर्विवाद सत्य है।

एच-88, शास्त्री नगर
मेरठ (उ.प्र.)

प्रकाश की ओर

भैयाजी

रात्री के 11 बज रहे थे। तूफानी वर्षा के बाद जाड़े की ठण्ड में काफी बढ़ोतरी हो गयी थी। शहर की मुख्य सड़क भी एकदम सुनसान नजर आ रही थी। मैंने पुल के चौपले की ओर बढ़ते हुए एकबारगी चारों तरफ नजर दौड़ाई। आदमी तो क्या, कहीं कोई जानवर भी नजर नहीं आ रहा था। मैं सोच रहा था कि आज तीन मील की पदयात्रा न करनी पड़ जाये। पुल का चोपला भी सुनसान पड़ा हुआ था। जहां चार-छः रिक्शे रात भर खड़े रहते थे वहां एक भी नहीं नजर आ रहा था। चाय वाला जिसकी दुकान भी रात भर खुली रहती थी, आज वह भी ठण्ड की वजह से दुकान बंद कर गया। मैंने एक बार फिर चारों ओर नजर दौड़ाई, कहीं भी कोई नजर नहीं आया। मन में आया कि पैदल चल पड़ूं किन्तु तीन मील का फासला और रात्रि का समय होने के कारण मैं बहुत परेशानी अनुभव कर रहा था सोचा और थोड़ा इन्तजार कर लूं। शायद कोई घर ले जाने वाला रिक्शा आ ही जाये। मैं इन्तजार का एक एक क्षण परेशानी के साथ गुजार रहा था कि सामने से एक रिक्शा वाला दिखाई दिया, मैंने राहत की सांस ली। जैसे ही वह नजदीक आया, मैंने पूछा, "क्यों भैया शहर चलोगे?"

– "साहब कहीं चलो, चलने के लिए ही तो रिक्शा चला रहा हूं।"

– "हां, हां, क्यों नहीं भाई। पैसे कितने लोगे?"

– "जो मरजी में आये, सो दे देना साहब, आपसे ही क्या ज्यादा ले लेंगे?"

– "फिर भी।"

रिक्शा वाला गद्दी से उतर कर खड़ा हो गया। अपने चिथड़े हुए कोट की जेबें टटोल कर बीड़ी निकाल कर सुलगाने लगा। दियासलाई की कम रोशनी में उसकी झुरियों से भरे चेहरे की लाईनें साफ दिखाई दे रहीं थीं। बीड़ी सुलगा कर दो दम मार कर उसने कहा, "साहब पोने बारह बजे हैं। मुझे भी शहर की ओर जाना है, पांच रुपया से क्या कम रहेगा?" मैंने कुछ कहना चाहा किन्तु समय की नाजुकता को देखते हुए कुछ न कह कर रिक्शा में बैठना ही गनीमत समझा। आधा रास्ता तय नहीं हो पाया था कि उसने चौराहे पर रिक्शा रोक ली। "रिक्शा क्यों रोक ली," मैंने पूछा "साहब रुपये दे दो।" उसने कहा। "लेकिन अभी तो शहर नहीं आया है, पैसे किस बात के?" "साहब! मैं आपको शहर उतार कर ही आऊंगा, लेकिन रुपये तो दे दो, जरूरत है।" "भाई यहां न दुकान है, न कुछ चीज है। ऐसी क्या जरूरत पड़ गयी है? क्या तुम्हारा घर नजदीक है?" "साहब आपसे नहीं छुपाऊंगा। जरा एक सिगरेट ले लूं। मैंने कहा कि यहां तो सिगरेट की दुकान भी नहीं है। तब उसने कहा कि, वह जो आदमी खड़ा है उसके पास स्पेशल सिगरेट है। तब मैं उसकी बात समझा शायद वह अफीम, चरस आदि की सिगरेट लेना चाहता है। मैंने उससे कहा नहीं भाई नहीं मैं नशे के लिए पैसे नहीं दूंगा। हां तुम मुझे घर उतार दो तो तुम्हारी मजदूरी पूरी हो जायेगी तब तुम पूरे पैसे ले लेना। लेकिन मैं घर पहुंचने से पहले पैसे नहीं दूंगा।

"साहब। आप खामखा नाराज हो रहे हैं।" वह मेरी आवाज की दृढ़ता को अनुभव कर चुप हो गया और अपने चिथड़े कोट की जेब में से बीड़ी निकाल कर जलाने लगा। दियासलाई की बुझती रोशनी में उसका चेहरा भी बुझा-सा दिखाई दिया। वह अब चुपचाप रिक्शा चलाने लगा था।

मैंने भी ठान ली थी कि यदि यह गरीब सच को समझ ले तो अच्छा है। मैंने कहा, "कुछ भी हो, कम से कम गरीब और मजदूर तबके के लिए तो नशा करना बच्चों का खून पीने के बराबर है और वह है कि अपने को खूनी समझता नहीं।" रिक्शे वाले ने एकदम पलट कर मेरी ओर देखा। फिर मैंने जोर देकर कहा, "भैया बुरा मानो या भला, है तो हकीकत। जिस पैसे से तुम नशा करते हो, यदि उस पैसे को बच्चों के पालन-पोषण में खर्च करो तुम्हें कितना आनन्द आये। क्यो भाई, कैसे चुप हो? क्या तुम्हें मेरी बात बुरी लगी?"

"साहब ऐसी बात नहीं है, जो बुरी लगे। आपने तो अच्छी बात ही बताई है।"

इतनी बात कह कर वह चुप हो गया किन्तु अचानक

बोला, बाबू चलो आपको आपके घर पर ही उतार दूं और फिर मेरे बताये हुए रास्ते पर चलने लगा। घर आते ही मैंने उसके हाथ पर पांच की बजाय छः रुपये रख दिये। वह पैसे लेने से बहुत इन्कार करता रहा। किन्तु मैं नहीं माना पूछने पर उसने अपना नाम पिरकासी लाल बताया। दिन बीते, महीने बीते। करीब एक साल होने आया था कि घर के आंगन में मैं बैठा था कि किसी सज्जन ने आवाज दी। मैं बाहर आया तो देखा कि एक व्यक्ति पाजामा-कुर्ता पहने बाहर खड़ा है। मैं कुछ बात उससे पूछता कि अचानक ही उसने मेरे पैर छू लिए। मैं असमंजस में था और पहचानने की कोशिश कर रहा था। "शायद आप नहीं पहचान पाये। मैं रिक्शा वाला परकासी हूं", आगन्तुक ने कहा। "ओ हो परकासी तुम। आओ, अन्दर आओ।" मैंने एकदम याद करते हुए कहा। "कहो परकासी कहां रहे ? बड़े दिनों बाद दिखाई दिये हो। मैंने दूसरे रिक्शे वालों से कई बार पूछा तो उन्होंने बताया कि तुमने रिक्शा चलाना ही छोड़ दिया। क्या यह सच है?" मैंने पूछा। "हां साहब, यह एक लंबी कहानी है। आपको याद होगा आपने कहा था नशा करना अपने बच्चों का खून पीने के बराबर है। मैं एकदम घबरा गया था। पहली बार बगैर नशे घर गया। मैं देखना चाहता था कि जैसा आपने कहा क्या वाकई ऐसा है। घर देखा तो सभी बच्चे कम्बल के चिथड़ों में लिपटे भूख से बिलख कर सो गये थे। मेरी पत्नी मेरे इंतजार में घर के टिमटिमाते चिराग के मद्धम अंधरे में कोने में सटी और सहमी हुई बच्चों के पास बैठी थी।" ऐसा लग रहा था किसी ने मुंह लगाकर मेरे बच्चों का खून चूस लिया हो। लेकिन अपराधी तो मैं ही था। मैं अपने आपको कोस रहा था। मैंने उस दिन कसम खाई कि मैं अपने अंदर घुसे इस शैतान को निकाल कर रहूंगा। मैं उस रात सो नहीं पाया। साहब, शायद आपसे किसी संयोग से मिला था और आपने नशे का असली रूप ही बता दिया। उस रात मुझे नशे का शैतान न पकड़ सका। सुबह होते ही आपके दिये हुए छः रुपयों से मैं आटा-दाल लाया और अपनी बिटिया को टाफी दी। लेकिन वह तब भी डर रही थी। मैंने बड़े प्यार से उसे पास बिठलाया, गोदी में लिया और वह पहली बार मेरी छाती से चिपक गयी थी। मैंने परकासी को टोकते हुए पूछा "परकासी आजकल तुम क्या कर रहे हो। "साहब कुछ दिनों तक रिक्शा चलाया। उसके बाद मैंने खराद की दुकान पर काम सीखा और अब बैंक से बीस सूत्रीय कार्यक्रम के तहत ऋण लेकर अब खुद दुकान खोल ली है। और मैं अब अच्छी तरह से हूं। धन्य हैं आप जिन्होंने मुझे रास्ता दिखाया और मैं इस सरकार का भी धन्यवाद करता हूं जिसने 20 सूत्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत हम गरीब लोगों को नई दिशा दी।"

द्वारा, धर्मवीर
एफ 115, आफीसर्स होस्टल
प्रगति विहार, नई दिल्ली

पृष्ठ 25 का शेष

दूसरा उपाय

सरकार ने हर वर्ष अपने विकास खर्च में प्रत्येक गांव के लिये अलग राशि तय की। यह राशि गांव के घरों की संख्या के आधार पर निर्धारित की जाती है। इस ग्राम आबंटन राशि के अनुसार प्रत्येक गांव की सार्वजनिक कोष समिति को नमूने के तौर पर सुझायी गयी योजनाओं की सूची के आधार पर गांव विकास योजना बनानी है। यह योजना अपने सोच-विचार से बनाने की गांव समिति को पूरी स्वतंत्रता है। आवश्यकता पड़ने पर सरकारी विशेषज्ञ गांवों में जाकर सार्वजनिक कोष समिति की बैठकों में सम्मिलित होकर अपने सुझाव दे सकते हैं। लेकिन अधिकारियों को यह अधिकार बिल्कुल नहीं होगा कि वे ग्राम समिति को किसी विशेष तरह से काम करने या किसी विशेष योजना को ही चलाने का आदेश दें।

आम भाषा में सार्वजनिक कोष समिति को ग्राम विकास बोर्ड कहा जा सकता है। (क्रमशः)

अनुवाद : ओम प्रकाश दत्त

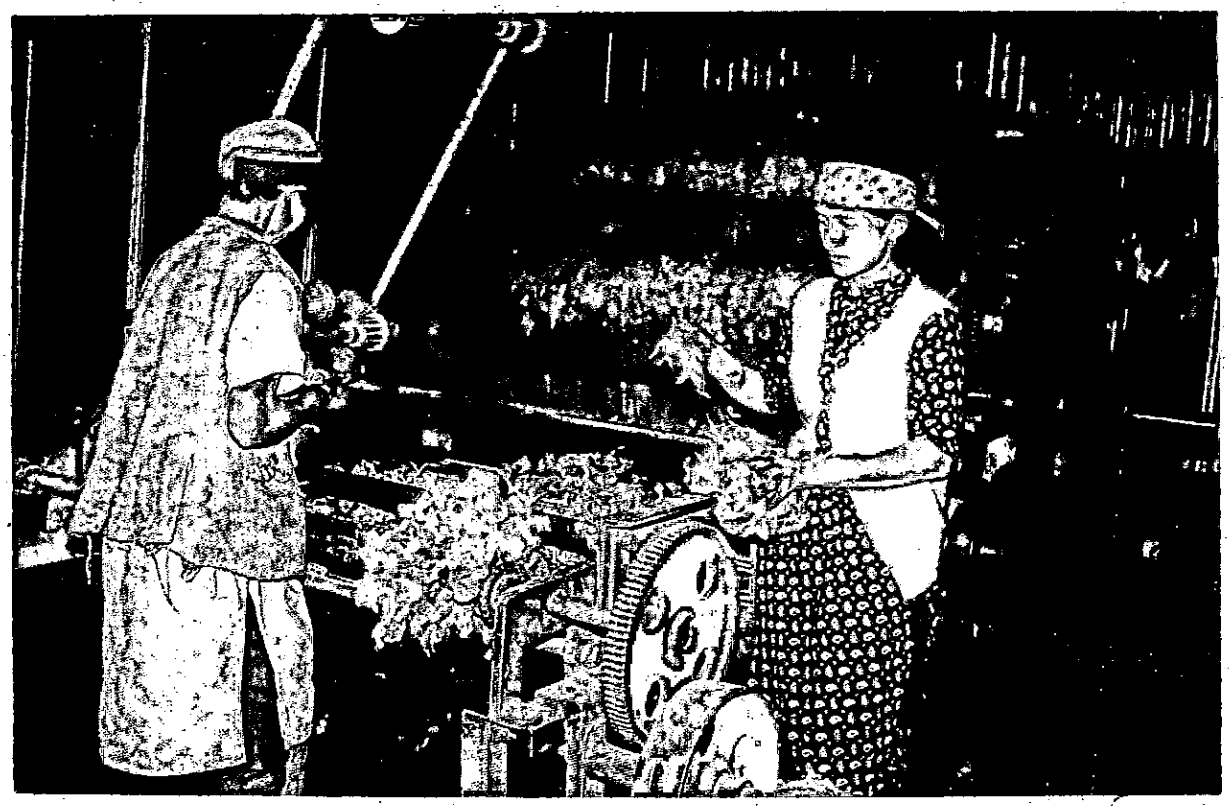

वित्तीय संस्थाएं न केवल छोटे किसानों, कारीगरों और अकुशल कामगारों को वित्तीय सहायता देती हैं बल्कि बड़े किसानों के भले के लिए भी कार्य करती हैं। इस प्रकार वे ग्रामीण विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

आर.एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : डी (डी एन) 98
पूर्व भुगतान के बिना एन.डी.पी.एस.ओ.. नई दिल्ली में डाक में डालने
की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55
दिल्ली डाक

RN/708/57
P & T Regd. No. D (DN) 98
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at NDPSO, New Delhi
Delhi Postal

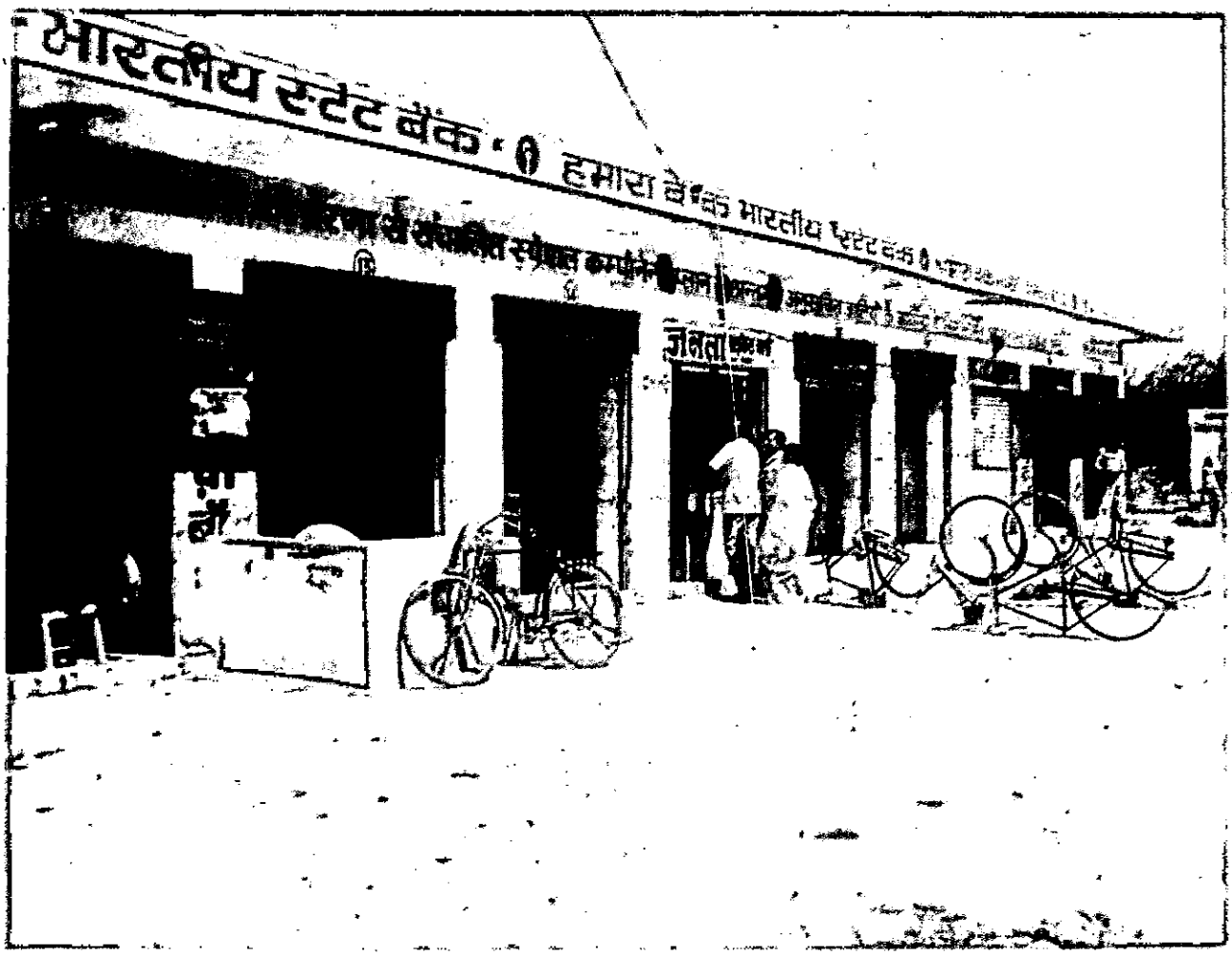

डा. श्याम सिंह शशि, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और
वीरेन्द्रा प्रिंटर्स, हरध्यान सिंह रोड, करोल बाग
नई दिल्ली-110005 द्वारा मुद्रित